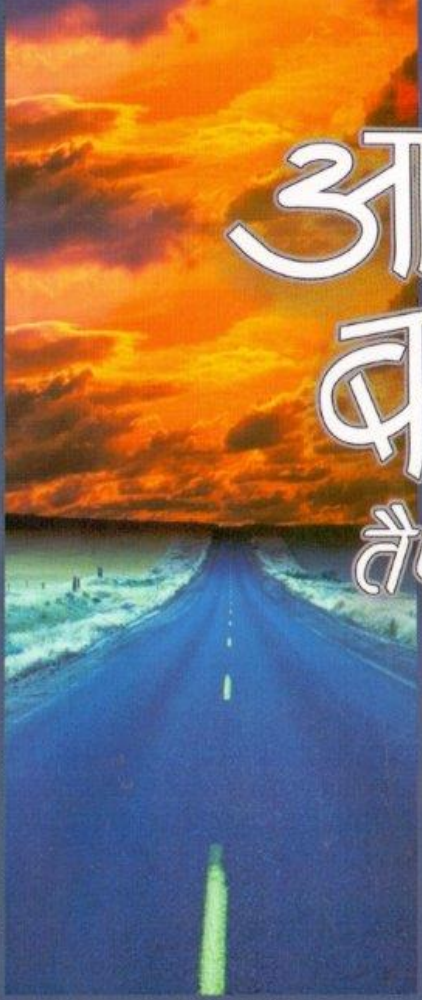

# आगे बढ़ने की तैयारी

• श्रीराम शर्मा आचार्य

# आगे बढ़ने की तैयारी

लेखक

**पं० श्रीराम शर्मा आचार्य**

प्रकाशक

**युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट**

**गायत्री तपोभूमि, मथुरा**

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य ९.०० रुपये

# भूमिका

विश्व का प्रत्येक परमाणु गतिशील है। हर वस्तु आगे बढ़ती है, विकसित होती है और अपनी यात्रा जारी रखती है। यह गतिशीलता सृष्टि का धर्म है। उस धर्म से प्रेरित होकर संपूर्ण जड़-चेतन पदार्थ को अपनी यात्रा जारी रखनी पड़ती है। मनुष्य भी इस नियम से बँधा हुआ है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत वह अपने जीवनक्रम को चलाता रहता है। इसके पश्चात भी वही क्रम जारी रहता है।

इस अनिवार्य यात्रा को किस प्रकार पार करना चाहिए—इस विज्ञान को जानना हर बुद्धिमान के लिए आवश्यक है। लोहारों के लिए लोहारी का काम, हलवाई के लिए मिठाई बनाने का काम, किसान के लिए खेती का काम जानना जिस प्रकार आवश्यक है, उसी प्रकार यात्रा करने वाले के लिए रास्ता चलने का, मुसाफिरी का ज्ञान होना आवश्यक है। हर व्यवस्थित काम को सुचारु रूप से करने के लिए पूर्व तैयारी की आवश्यकता होती है। महान कार्य पूरे तब होते हैं, जब उनको आरंभ करने से पूर्व ठीक प्रकार योजना बना ली जाती है। जीवन की यात्रा भी एक बहुत बड़ी योजना है, इसे पूरा करने के लिए पूर्व तैयारी किए बिना काम नहीं चल सकता।

हमारा जीवन आगे बढ़ रहा है। यह यात्रा ठीक प्रकार सुव्यवस्थित रीति से उचित दिशा में हो, इसके लिए हमें पूर्व तैयारी करने की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। पाठक, अपने मौलिक और आत्मिक साधनों को उचित रीति से बढ़ा सकें, इस कार्य की पूर्ति में यह पुस्तक सहायक होगी ऐसा हमारा विश्वास है।

**—श्रीराम शर्मा आचार्य**

# आगे बढ़ने की तैयारी

## आगे बढ़िए, उन्नति कीजिए, विकसित होइए

ब्रह्मविद्या की अंतरात्मा पुकार-पुकार कर कहती है कि उठो, जागो और उन्नति के लिए आगे बढ़ो। प्रकृति का हर एक परमाणु आगे बढ़ने के लिए हलचल कर रहा है। सूर्य को देखिए, चंद्रमा को देखिए, नक्षत्रों को देखिए सभी तो चल रहे हैं, यात्रा का क्रम जारी रख रहे हैं। एक क्षण के लिए भी विश्राम करने को उन्हें फुरसत नहीं। नदियाँ दौड़ रही हैं, वायु बह रही है, पौधे ऊपर उठ रहे हैं, वृक्ष नवीन फल उपजा रहे हैं, जो पदार्थ स्थिर मालूम पड़ते हैं वे भी अदृश्य रूप से चल रहे हैं। भूमि में रहने वाले रासायनिक पदार्थ चुपके-चुपके एक जगह से दूसरी जगह को चलते जाते हैं, शरीर के नवीन घटक नित नया रूप धारण करते हैं, अन्न से आटा, आटे से रोटी बनी, रोटी का मल, मल का खाद, खाद से वनस्पति। इस प्रकार उन परमाणुओं की यात्रा जारी रहती है। प्रकृति के परमाणुओं का अन्वेषण करने वाले वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रत्येक विद्युत घटक (इलेक्ट्रॉन) प्रति-सेकंड सैकड़ों मील की चाल से अपनी धुरी पर घूमता हुआ आगे बढ़ रहा है। इस विश्व का हर एक कण आगे बढ़ रहा है।

हम अपनी "जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्त्विक प्रकाश" पुस्तक में सविस्तार यह बता चुके हैं कि जीव आगे बढ़ रहा है। प्रत्येक जन्म से वह आगे ही बढ़ता जाता है। उन्नति-क्रम पर निरंतर आगे बढ़ने की उसकी भूख ईश्वरप्रदत्त है। उन्नति से संतुष्ट होने का कोई प्रश्न नहीं उठता, मनुष्य को अपनी संपूर्ण अपूर्णताएँ

हटाकर उतना उन्नत बनना है, जितना उसका पिता-ईश्वर है। जब तक जीवन मुक्त ब्रह्मस्थित नहीं हो जाता, तब तक यात्रा में विराम कैसा? मंजिल में रुकना कैसा? मामूली-सी उन्नति कर जाने पर लोग कहने लगते हैं, अब इतना मिल गया संतोष करना चाहिए। अधिक के लिए हाय-हाय क्यों करें? जो कुछ उपलब्ध हो गया है उतना ही बहुत है। यह अनात्मवादी विचारधारा है, ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध है, प्रकृति के नियमों के विपरीत है। भोजन करके मनुष्य संतुष्ट हो जाता है, उसकी भूख बुझ जाती है, फिर उससे एक लड्डू और खाने को कहा जाए तो न खा सकेगा, इससे यह प्रकट होता है कि इस दशा में प्राकृतिक नियम और अधिक खाने का विरोध करते हैं। परंतु उन्नति से कोई संतुष्ट नहीं होता, हर व्यक्ति यही चाहता रहता है कि मैं और अधिक आगे बढ़ूँ और उन्नति करूँ।

नाक से जो हवा हम खींचते हैं, वह शरीर में अंदर जाती है उसका ऑक्सीजन तत्त्व रक्त को लालिमा प्रदान करता है। तदुपरांत वह वायु निष्प्रयोजन हो जाती है, उसे शरीर निकालकर बाहर फेंक देता है। जब साँस खींची गई थी, तब वही वायु बहुत उपयोगी थी, पर वह उपयोग पूरा होते ही उस वायु की उपयोगिता भी नष्ट हो गई। अब नई वायु चाहिए। नया साँस लेना पड़ेगा, यदि पुराने साँस पर ही संतुष्ट रहा जाए और यह सोचा जाए कि हमारे लिए तो इतनी ही वायु पर्याप्त है, ज्यादा लेकर क्या करेंगे, तो यह विचार हानिकारक सिद्ध होगा, जीवन की प्रगति रुक जाएगी। ठीक यही बात उन्नति के संबंध में लागू होती है। आपने जो शक्ति पहले संपादित की थी उसने एक हद तक आत्मा को बल दिया, ऊँचा उठाया, अब उसकी शक्ति समाप्त हो गई। एक बार भोजन किया था, उसकी उपयोगिता पूरी हो गई, वह पच गया तो नया भोजन चाहिए। एक बार साँस ली थी, वह अपना काम कर चुकी तो नई साँस चाहिए। एक समय जो उन्नति की थी उससे उस समय उत्थान मिला। अब आगे और शक्ति प्राप्त करने के लिए और ऊँचा चढ़ने के लिए, नवीन प्रोत्साहन

के लिए नई उन्नति चाहिए। एक गेलन पेट्रोल लेकर मोटर दस मील चल आई अब उसे और आगे चलना है, तो और पेट्रोल दीजिए, वरना वह जहाँ-की-तहाँ पड़ी रहेगी, आगे चलने का काम बंद हो जाएगा।

बराबर आगे बढ़ते रहने के लिए, बराबर नई शक्ति प्राप्त करते रहना आवश्यक है। आपकी उन्नति का क्रम कभी भी रुकना न चाहिए। निरंतर कदम आगे बढ़ाए चलना है और महानता को बूँद-बूँद इकट्ठी करके अपनी लघुता का खाली घड़ा पूर्ण करना है। उस कर्महीन मनुष्य का अनुकरण करने से आपका काम न चलेगा। जो पेट भरते ही हाथ-पैर फैलाकर सो जाता है और जब भूख बेचैन करती है, तब करवटं बदलता और कुड़-कुड़ाता है। छोटी चींटी को देखिए, वह भविष्य की चिंता करती है, आगे के लिए अपने बिल में दाने जमा करती है, जिससे जीवन संघर्ष में अधिक दृढ़तापूर्वक खड़ी रहे, दस दिन पानी बरसने के कारण बिल से बाहर निकलने का अवसर न मिले, तो भी जीवित रह सके। छोटी मधुमक्खी भविष्य की चिंता के साथ आज का कार्यक्रम निर्धारित करती है। आज की जरूरत पूरी करके चुप बैठ रहना उचित नहीं, इस जन्म और अगले जन्म में आपको लगातार उन्नति-पथ पर चलना है, तो यह अत्यंत आवश्यक है कि यात्रा में बल देते रहने योग्य भोजन की व्यवस्था का ध्यान रखा जाए। इस समय आप जितना बल संचय कर रहे हैं, वह आगे चलकर बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। उसकी क्षमता से भविष्य का यात्राक्रम अधिक तेजी और सरलता से चलता रहेगा।

योग-साधन के फलस्वरूप सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अष्ट सिद्धि, नवनिधि के लिए लालायित होकर अनेक साधक कठोर साधनाएँ करते हैं, विजयी बनने के लिए मृत्यु की छाया में रणक्षेत्र की ओर कदम बढ़ाते हैं, स्वर्ग-लाभ के लिए दुर्गम वन-पर्वतों की यात्रा करते हैं, धनी बनने के लिए एड़ी से चोटी तक पसीना बहाते हैं,

बलवान बनने के लिए थककर चूर-चूर करने वाले व्यायाम में प्रवृत्त होते हैं, विद्वान बनने के लिए रात-रातभर जागकर अध्ययन करते हैं। यह उदाहरण बताते हैं कि उन्नत बनने की आवश्यकता को हमारी अंत:चेतना विशेष महत्त्व देती है और उस आवश्यकता को पूरा करने के लिए हम बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाने को, कठिन-से-कठिन प्रयत्न करने को तत्पर हो जाते हैं। नकली आवश्यकता और असली आवश्यकता की पहचान यह है कि नकल के लिए, संदिग्ध बात के लिए त्याग करने की तत्परता नहीं होती, असली आवश्यकता के लिए मनुष्य कष्ट सहने और कुरबानी करने को तैयार रहता है। एक आदमी सिनेमा का शौकीन है, उससे कहा जाए कि एक खेल देखने के बदले में तुम्हें अपनी उँगली कटानी पड़ेगी, तो वह ऐसा खेल देखने से मना कर देगा, क्योंकि खेल देखने की आवश्यकता नकली है, उसके लिए इतना बड़ा कष्टसहन नहीं किया जा सकता। परंतु यदि स्त्री, पुत्र आदि कोई प्रियजन अग्निकांड में फँस गए हों, तो उन्हें बचाने के लिए जलती हुई अग्नि शिखाओं में कूदा जा सकता है, फिर चाहे भले ही उसमें झुलसकर अपना भी शरीर चला जाए। सिनेमा का खेल देखने की आवश्यकता का और प्रियजनों की जीवन-रक्षा करने की आवश्यकता में कौन असली है, कौन नकली? उसकी पहचान उसके लिए त्याग करने की मात्रा के अनुसार जानी जा सकती है। हम देखते हैं कि उन्नति करने की लालसा मानव स्वभाव में इतनी तीव्र है कि वह उसके लिए कष्ट सहता है और जोखिम उठाता है। यह भूख असली है। असली आवश्यकता में इतना आकर्षण होता है कि उसके लिए तीव्र शक्ति से प्रयत्न करने को बाध्य होना पड़ता है। मौज में पड़े रहना किसी को बुरा नहीं लगता, पर उन्नति की ईश्वरप्रदत्त आकांक्षा इतनी तीव्र है कि उसके लिए मौज छोड़कर लोग कष्ट सहने को तत्पर हो जाते हैं।

संतोष रखने का तात्पर्य यह है कि जब प्रयत्न करते हुए भी

किसी कारणवश सफलता न मिले या अल्प मात्रा में मिले तो उस समय मानसिक विक्षोभ के ऊपर काबू रखा जाए, निराशा और दु:ख से बचने के लिए ईश्वरेच्छा समझकर संतोष किया जाए। उन्नति करना ईश्वरीय आज्ञा है, जिसका पालन करना हर विवेकशील व्यक्ति को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। यह संसार कर्मभूमि है, कर्तव्य करने के लिए आप अवतीर्ण हुए हैं, अपने इच्छित उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करके विजयी और वैभवशाली बनने की इच्छा कीजिए और उस इच्छा को पूर्ण करने में उत्साह के साथ प्रवृत्त हो जाइए।

पिता अपने उस बच्चे को अधिक प्यार करता है, जो अधिक उद्योगी होता है। कमाऊ पूत का घर में स्वागत-सत्कार किया जाता है। पिता को उसकी कमाई नहीं चाहिए, पर उन्नति देखकर उसे संतोष होता है। एक लड़का कलेक्टर हो जाए और दूसरा भीख माँगे तो पिता जगह-जगह अपने उस लड़के की प्रशंसा करेगा जो कलेक्टर हो गया है। भले ही उस उच्च पद का भौतिक लाभ उस लड़के को ही मिलता है, तो भी पिता इसमें गर्व करता है कि मेरी एक रचना प्रशंसा के योग्य सिद्ध हुई। भिखारी लड़के के बारे में पिता मन-ही-मन खिन्न रहता है, उसके कार्यों से स्वयं भी लज्जित होता है, किसी से उसके बारे में चर्चा नहीं करता और अपरिचितों में यह प्रकट नहीं करता कि यह मेरा ही लड़का है। निरुद्योगी संतान पर भला कौन अभिभावक गर्व कर सकता है? किसे उस पर प्यार हो सकता है?

जब बालक खेल में जीतकर आता है, परीक्षा में उत्तीर्ण होकर आता है, प्रतियोगिता में पुरस्कार लेकर आता है, तो पिता के चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएँ दौड़ जाती हैं, वह बच्चे को उठकर छाती से लगा लेता है। दूसरा मरियल लड़का जो घर बैठा-बैठा मक्खी मारा करता है, उससे उतना प्यार नहीं हो सकता, भले ही वह सारे दिन पिता के पैर दबाया करे या पंखा झला करे। अपने ऊपर पंखा झला जाने की अपेक्षा पिता यह पसंद करता है कि बालक चाहे उसके

कुछ भी काम न आए, पर स्वयं उन्नति करे, आगे बढ़े, विजय प्राप्त करे। ईश्वर भी हम से ऐसी ही आशा करता है, वह आपको पराक्रमी, पुरुषार्थी, उन्नतिशील, विजयी, महान वैभवयुक्त, विद्वान, गुणवान देखकर बहुत प्रसन्न होता है और अनायास ही उठाकर छाती से लगा लेता है। उसे इस बात की इच्छा नहीं कि आप तिलक लगाते हैं या नहीं, पूजा-पत्री करते हैं या नहीं, भोग, आरती करते हैं या नहीं, क्योंकि उस सर्व-शक्तिमान प्रभु का कुछ भी काम इन सबके बिना रुका हुआ नहीं है। वह इन बातों से प्रसन्न नहीं होता, उसकी प्रसन्नता तब प्रस्फुटित होती है, जब अपने पुत्रों को ऊँचा चढ़ते, उन्नति करते देखता है, अपनी रचना की सार्थकता अनुभव करता है।

देखा जाता है कि जो लोग उन्नतिशील स्वभाव के होते हैं, उन्हें कहीं-न-कहीं से आगे बढ़ाने वाली सहायताएँ प्राप्त होती रहती हैं। कभी-कभी तो अचानक ऐसी मदद मिल जाती है जिसकी पहले कुछ भी आशा नहीं थी। छोटे-छोटे आदमी बड़े-बड़े काम कर डालते हैं, उन्हें अनायास ऐसे अवसर मिल जाते हैं, जिससे बहुत बड़ी उन्नति का रास्ता खुल जाता है। साधारण बुद्धि के लोग उन्हें देखकर ऐसा कहा करते हैं—अमुक व्यक्ति का भाग्योदय हुआ, उसके भाग्य ने अचानक ऐसे कारण उपस्थित कर दिए जिससे वह तरक्की की ओर बढ़ गया। हम इसे ईश्वर की कृपा कहते हैं। पिता अपने बालकों की आदतों और इच्छाओं को परखता है, जो लड़का पढ़ने के लिए बेचैन है, उसे स्कूल भेजता है, जो व्यापार चाहता है उसे दुकान खुलवाता है, जो ठल्ल है उसे पशु चराने का काम सौंप देता है। व्यापार में पैसे की जरूरत समझता है तो पिता उसके लिए व्यवस्था करता है, पढ़ने वाले की पढ़ाई का खरच जुटाता है। पढ़ाई खरच के लिए अचानक पहुँचा हुआ मनीआर्डर देखकर कोई नादान लड़का यह ख्याल कर सकता है कि यह पैसा अकस्मात् कहीं से आ टूटा है, पर असल में इस व्यवस्थित विश्व में अकस्मात् कुछ

नहीं है, सब कार्य व्यवस्थापूर्वक चल रहे हैं। पढ़ने की उत्कट इच्छा रखने वाला बालक पिता का ध्यान बलात् अपनी ओर खींचता है और उसे पढ़ाई में मदद करने के लिए बाध्य करता है। ठल्ल स्वभाव के लड़के को चरवाहा बनाकर पिता निश्चिंत है, पर उद्योगी बालक को तो वह निरालंभ नहीं छोड़ सकता।

जो मनुष्य आगे बढ़ने की तीव्र इच्छा करते हैं, उन्नति के लिए सच्चे हृदय से जो जाँफिशानी के साथ प्रयत्नशील है, उसके प्रशंसनीय उद्योग को देखकर ईश्वर प्रसन्न होता है, अपना सच्चा आज्ञापालक समझता है और उसे प्यार करता है। जिस पर उस परम पिता का विशेष स्नेह है, उसे यदि वह कुछ विशेष सहायता दे देता है, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। एक प्रसिद्ध कहावत है कि—"ईश्वर उसकी मदद करता है, जो अपनी मदद आप करता है।" उन्नतिशील स्वभाव के लोगों को, उनकी उचित प्रवृत्ति में सहायता करने के लिए परमपिता परमात्मा ऐसे साधन उपस्थित कर देता है जिससे उसकी यात्रा सरल हो जाती है। अचानक, अनिश्चित एवं अज्ञात सहायताओं का मिल जाना, इसी प्रकार संभव होता है। बाइबिल का वचन है कि—"जो माँगता है, उसे दिया जाता है, जो जो द्वार खट-खटाता है, उसके लिए खोला जाता है।" रामचरितमानस कहता है कि—"जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहिं न कछु संदेहू।" यह विश्व प्रभु की सर्वांगपूर्ण कृति है, यहाँ किसी वस्तु का अभाव नहीं है। सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते कि पाने को उत्कट लालसा के साथ तीव्र प्रयत्न भी हो। छोटा बच्चा जब घुटनों चलता है, तो माता उसे खड़ा होकर चलना सिखाती है। वह मिठाई का टुकड़ा जरा ऊँचा रखकर दिखाती है, ताकि बालक उसे लेने के लिए पैरों के बल खड़ा हो जाए। जब खड़ा होना सीख जाता है तो फल, मिठाई, खिलौना आदि का लालच देकर पैरों के बल चलना सिखाती है और बच्चे को प्रोत्साहित करती है, इसमें उसका यह उद्देश्य छिपा रहता है कि बच्चा घुटनों चलना छोड़कर

खड़ा होना और पैरों के बल चलना सीखे, उन्नति करने की यात्रा को जारी रखे। परमात्मा ने हमें धन, विद्वत्ता, बल, पदवी आदि के लालच इसलिए उपस्थित किए हैं कि उनको पाने के लिए हम घोर प्रयत्न करें और उस प्रयत्न के साथ-साथ अपनी मनोभूमि को उन्नत, बलवान विकसित बनाएँ।

हम लोग उन छोटे बालकों की भाँति कार्य कर रहे हैं, जो मिठाई के लालच में खड़े होकर चलना सीखने का प्रयत्न करते हैं। भौतिक ऐश्वर्य नाशवान है, थोड़ी देर ठहरते हैं, जल्दी नष्ट हो जाते हैं; यह ठीक है, वे सदा किसी के पास नहीं रहते, यह भी ठीक है, पर इसी के कारण उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं छोड़ा जा सकता। मिठाई का टुकड़ा बच्चे की जन्मभर की भूख नहीं बुझा सकता, यह हमेशा रखा भी नहीं रहेगा, उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं करता, यह ठीक है। तो भी यदि बालक उसे लेने का प्रयत्न करता है, तो उसे हानि नहीं, वरन लाभ ही है। छोटा टुकड़ा मिला-सही, पर कुछ-न-कुछ मिला तो। थोड़ी जिह्वा ने मधुरता का आनंद चखा सही, पर चखा तो। टुकड़े को प्राप्त करने पर थोड़ी देर प्रसन्नता हुई-सही, पर-हुई तो। कुछ-न-कुछ उसने पाया ही, गँवाया तो नहीं। अप्रत्यक्ष रूप से देखा जाए तो टुकड़े की अपेक्षा बहुत मूल्यवान वस्तु पाई, उसकी शक्ति बढ़ी, खड़े होने की आदत पड़ी, उन्नति करने का प्रोत्साहन मिला, आत्मविश्वास बढ़ा, मन में मजबूती आई, यह सब क्या कम लाभ है?

यदि वह बालक आजकल के निराशावादियों की तरह कहता—'यह टुकड़ा तो जरा-सा है, झट पेट में चला जाएगा, इसे लेकर क्या करूँगा, मैं इसे नहीं लेता, इसके लिए खड़ा होने की मेहनत नहीं करता।' क्या ऐसे उत्तर से माता प्रसन्न होती? क्या ऐसे विचार से उसे खुद कुछ लाभ होता? इस तरह का सोचना सब दृष्टियों से उसी के लिए हानिकर सिद्ध होता।

भौतिक संपदा त्याज्य, घृणित या न छूने योग्य नहीं है। इंद्रियों

के द्वारा जो भोग भोगे जाते हैं, वे पातक नहीं हैं। पेट में भूख उत्पन्न करके परमात्मा ने मनुष्य को निरंतर काम में लगे रहने का एक चक्र बना दिया है, जिससे उसका निरंतर कार्य करने का, आगे बढ़ने का क्रम बंद न होने पाए। इसी प्रकार इंद्रियजन्य, अन्य भूखों की रचना हुई है, काम-वासना बुरी नहीं है, मानव तत्त्व के गंभीर अन्वेषकों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि साधारण श्रेणी के मनुष्यों के लिए कामसेवन आवश्यक है, इसके अभाव में कुछ शारीरिक और अनेक मानसिक रोग उपज खड़े होते हैं। संसार भर की मृत्यु गणना से यह स्पष्ट हो गया है कि विवाहितों की अपेक्षा विधवा एवं विधुर अल्पायु होते हैं और अधिक संख्या में मरते हैं। इससे प्रकट है कि प्राकृतिक भूख को दबाने का क्या परिणाम निकलता है। नासिका स्वच्छ वायु पसंद करती है, यदि उसकी भूख को दबाकर बदबूदार स्थान में रहेंगे, तो घाटा उठाना पड़ेगा। नेत्र मनोहर दृश्य देखना पसंद करते हैं, यदि उनकी भूख को कुचलकर घृणित, अरुचिकर दृश्य देखेंगे तो उसका बुरा फल भोगेंगे। प्राकृतिक भूखों की एक ऐसी कसौटी मनुष्य के पास मौजूद है, जिसकी सहायता से वह आसानी से जान सकता है कि मेरे लिए क्या ईश्वरीय आज्ञा है, क्या नहीं? कभी-कभी मनुष्य मध्यम मार्ग को छोड़कर अति की ओर भटक जाता है, यह 'अति' ही पाप है। इसी को रोकने के लिए धर्मशास्त्रों का अंकुश है। अन्यथा स्वाभाविक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में कुछ बुराई नहीं है, छोटे-मोटे आकर्षण जो सामने आते हैं, उन्हें प्राप्त करने की इच्छा से उद्योग करें तो इसमें हानि कुछ नहीं, लाभ शारीरिक भी हैं और आत्मिक भी।

आप 'उन्नति करना' अपने जीवन का मूल मंत्र बना लीजिए, ज्ञान को अधिक बढ़ाइए, शरीर को स्वस्थ, बलवान और सुंदर बनने की दिशा में अधिक प्रगति करते जाइए, प्रतिष्ठावान हूजिए, ऊँचे पद पर चढ़ने का उद्योग कीजिए, मित्र और स्नेहियों की संख्या बढ़ाइए, पुण्य संचय करिए, सद्गुणों से परिपूर्ण हूजिए, आत्मबल

बढ़ाइए, बुद्धि को तीव्र करिए, अनुभव बढ़ाइए, विवेक को जाग्रत होने दीजिए। बढ़ना-आगे बढ़ना और आगे बढ़ना, यात्री का यही कार्यक्रम होना चाहिए।

अपने को असमर्थ, अशक्त एवं असहाय मत समझिए, ऐसे विचारों का परित्याग कर दीजिए कि साधनों के अभाव में हम किस प्रकार आगे बढ़ सकेंगे। स्मरण रखिए—शक्ति का स्रोत साधनों में नहीं, भावना में है। यदि आपकी आकांक्षाएँ आगे बढ़ने के लिए व्यग्र हो रही हैं, उन्नति करने की तीव्र इच्छाएँ बलवती हो रही हैं, तो विश्वास रखिए साधन आप को प्राप्त होकर रहेंगे, ईश्वर उन लोगों की पीठ पर अपना वरदहस्त रखता है, जो हिम्मत के साथ आगे कदम बढ़ाते हैं। पिता आपकी प्रयत्नशीलता को, बहादुरी की आकांक्षा को पसंद करता है और वह चाहे तामसी ही क्यों न हो, बढ़ने में मदद करता है।

प्रकृति विज्ञान के महापंडित डॉक्टर ई० बी० जेम्स ने अनेक तर्क और प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि 'योग्यतम का चुनाव' प्रकृति का नियम है। जो बलवान है उसकी रक्षा के लिए अनेक कमजोरों को वह नष्ट हो जाने देती है। आँधी, ओले, तूफान, कमजोर पेड़ों को उखाड़ फेंकते हैं, किंतु बलवान वृक्ष जहाँ-के-तहाँ दृढ़तापूर्वक खड़े रहते हैं। बीमारी, गरीबी, लड़ाई के संघर्ष में कमजोर पिस जाते हैं, किंतु बलवान उन आघातों को सह जाते हैं। बड़ी मछली की जीवन-रक्षा के लिए हजारों छोटी मछलियों को प्राण देने पड़ते हैं, बड़े पेड़ को खुराक देने के लिए छोटे पौधों को भूखा मर जाना पड़ता है, एक पशु का पेट भरने के लिए घास-पात की असंख्य वनस्पति नष्ट हो जाती हैं, सिंह की जीवन-रक्षा के लिए अनेक पशु अपने जीवन से हाथ धोते हैं। यह कड़ुई सचाई अपने निष्ठुर स्वर में घोषणा करती है कि जीवन एक संघर्ष है; इसमें वे ही लोग स्थिर रहेंगे जो अपने को सब दृष्टियों से बलवान बनाएँगे। यह 'वीर भोग्या वसुंधरा' निर्बलों के लिए नहीं है, यह तो

पराक्रमियों की क्रीड़ाभूमि है। यहाँ पुरुषार्थियों को विजय माला पहनाई जाती है और निर्बलों को निष्ठुरतापूर्वक निकाल बाहर किया जाता है।

सावधान हूजिए, गफ़लत को त्याग दीजिए, कहीं ऐसा न हो कि आप शक्ति संपादन की ओर से उपेक्षा करके 'चैन करने' में रस लेने लगें और प्रकृति के निष्ठुर नियम आपको निर्बल पाकर दबोच दें। कहीं ऐसी स्थिति में न पड़ जाएँ कि निर्बलता के दंड-स्वरूप असह्य वेदनाओं की चक्की में पिसने को विवश होना पड़े। इसलिए पहले से ही सजग रहिए। आत्मरक्षा के लिए सावधान हूजिए, जीवन संग्राम में अपने को बरबाद होने से बचने के लिए शक्ति का संपादन कीजिए, बलवान बनिए। सुदृढ़ आधारों पर अपने को खड़ा कीजिए।

अध्यात्मवाद कहता है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन यह है कि आप आगे चलें, ऊँचे उठें। आत्मरक्षा के लिए दृढ़ता चाहिए, विपत्ति से बचने के लिए मजबूती चाहिए, भोग-ऐश्वर्यों का सुख भोगने के लिए शक्ति चाहिए, परमार्थप्राप्ति के लिए तेज चाहिए। दशों दिशाओं की एक ही पुकार है—आगे बढ़िए, अधिक इकट्ठा कीजिए। हम कहते हैं कि आत्मोन्नति कीजिए। ईश्वर को प्राप्त करने की साधना को जारी रखिए, उस महान पथ को पूरा करने की योग्यता बनाए रखने के लिए सांसारिक उन्नतियों को एकत्रित कीजिए, उच्च, प्रतिष्ठित शक्तिशाली और वैभववान बनने की दिशा में सदैव प्रगति करते रहिए।

# सफलताओं की जननी—आरोग्यता की रक्षा कीजिए

सब कोई यह चाहते हैं कि हम स्वस्थ एवं नीरोग रहें। स्वास्थ्य-प्राप्ति के नाम पर शक्तिभर धन व्यय किया जाता है, बहुमूल्य खाद्य पदार्थ बनाए जाते हैं, वैद्य-डॉक्टरों की जेबें भरी जाती हैं, मांस आदि दुर्गंधित और अभक्ष वस्तुओं को गले से नीचे उतारा जाता है, वस्त्रों द्वारा ऋतु प्रभाव से बचने का, सवारी द्वारा श्रम बचाने का प्रयत्न किया जाता है। रहने के कमरों को जाड़े में गरम और गरमी में ठंढा रखने की व्यवस्था की जाती है। तंदुरुस्ती को कायम रखने और उसे बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति इच्छुक है, इसके लिए वह पैसा और समय खरच करता है या करना चाहता है। ऐसा एक भी व्यक्ति न मिलेगा जो यह चाहता हो कि मैं दुर्बल या रोगी रहूँ।

यह सचाई सर्वविदित है कि नीरोग रहकर ही उन्नति की किसी दिशा में प्रगति की जा सकती है, जो आदमी तंदुरुस्त है, वही संपदाओं को एकत्रित कर सकता है और उनका सुख भोग सकता है। करोड़ों रुपयों की संपत्ति पास में हो, पर तंदुरुस्ती नहीं तो वह किस काम की? स्वादिष्ट भोजनों का थाल सामने रखा हो, पर पेट में उन्हें स्वीकार करने की शक्ति न हो, तो वह भोजन किस काम का? भाँति-भाँति के रुचिकर भोग-ऐश्वर्य मौजूद हैं, पर उन्हें भोगने की शक्ति ही नहीं, तो उनकी मौजूदगी से क्या लाभ हुआ? गंजा आदमी बहुमूल्य कंघे का क्या उपयोग करेगा? लूले मनुष्य के लिए सुंदर जूते क्या संतोष दे सकते हैं? संसार बड़ा आनंदमय है, इसमें सर्वत्र प्रफुल्लता और प्रसन्नता के परमाणु बिखरे पड़े हैं, हर

जगह खुशी के फुहारे छूट रहे हैं, सिनेमा की निर्जीव प्रतिमाएँ दो घड़ी तक मन को प्रसन्नता से आंदोलित रखती हैं, संसार जीता-जागता सिनेमा है, इसमें सजीव तसवीरें चल-फिर रहीं हैं, अपना-अपना पार्ट अदा कर रही हैं, कोई तसवीर हँसाती है, कोई रुलाती है, कोई क्रोध उत्पन्न करती है, कोई शांति प्रदान करती है। नाना प्रकार के भावों को थोड़े ही समय में उभारने की क्षमता रखने वाला सिनेमा सब मिलाकर रोचक और मनोरंजक ही ठहराया जाता है। यह संसार भी सब मिलाकर आनंददायी, हर्षोत्पादक एवं शांतिदायक ही ठहरता है। जबान से कोई कुछ भी कहे, पर अंत:चेतना इस तथ्य को भली-भाँति पहचानती है। यही कारण है कि जब किसी से पूछा जाए कि—"तुम्हें स्वर्ग मिल जाएगा, आओ तुम्हारी गरदन काट डालें" तो वह इसके लिए तैयार न होगा। क्योंकि इस सचाई को वह जानता है कि संसार में कुछ अप्रिय तत्त्व मौजूद हैं तो भी सब मिलाकर उसमें प्रसन्नता अधिक है, ऐसी प्रसन्नता की जगह को वह क्यों छोड़े?

बेशक इस संसार में आनंददायी, रुचिकर तत्त्वों की मात्रा अधिक है। इसीलिए शुद्ध, बुद्ध, निर्लिप्त, निरंजन आत्मा इसमें प्रकट होने के लिए बार-बार प्रयत्न करता है, हर बार जन्म धारण करता है, मरता है, मरकर फिर इसी में लौट आता है। ऐसे आकर्षण और मनोरंजक स्थान में भी अनेक अभागे ऐसे हैं, जो उसका रसास्वादन करने से वंचित रह जाते हैं। कारण यह है कि प्रसन्नता और आनंद, ऐसे तरल पदार्थ हैं जैसे दूध एवं जल। इनको लेने के लिए पात्र की आवश्यकता है, यदि आपके पास पात्र न हो तो जल को ले न सकेंगे। इसी प्रकार यदि बलरूपी पात्र अपने पास न हो तो सांसारिक आनंदों को प्राप्त कर सकना कठिन है। जिन्हें दुर्भाग्य का रोना रोते रहने में दिलचस्पी नहीं है, वरन् हँसते हुए संसार के साथ में खुद भी हँसना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि शक्ति की उपासना करें, बल का संचय करें।

आरंभिक बल 'स्वास्थ्य' है। इसकी महत्ता इतनी अधिक है कि सब प्रकार की उन्नति का मूल इसे कहा गया है। शास्त्र का मत है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल साधन आरोग्य है। जो नीरोग नहीं, वह न तो धर्म कर सकता है, न धन कमा सकता है, न काम में सफल हो सकता है और न उसे मोक्ष ही प्राप्त हो सकती है। इन चारों बातों के लिए स्वस्थ शरीर और नीरोग मन की आवश्यकता है, यदि तंदुरुस्ती नहीं तो संसार में आनंद कहीं नहीं। अपनी पीड़ा और व्यथा से ही कराहते रहने वाले को बेचैनी एवं व्याकुलता से ही छुटकारा नहीं मिलता, बेचारा आनंद का स्पर्श किस प्रकार करे? स्वास्थ्य की उपयोगिता इतनी स्पष्ट है कि उसके संबंध में दो मत नहीं हो सकते। इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करके उपभोग करने के लिए जिन शक्तियों की आवश्यकता है, उनमें स्वास्थ्य सर्वोपरि है। इसके अभाव में जीवन आनंदरहित, नीरस, अप्रिय, भारस्वरूप हो जाता है।

स्वास्थ्य एक ऐसी प्रकृतिदत्त स्वाभाविक अवस्था है जो कुछ अपवादों को छोड़कर सबको आमतौर से प्राप्त होती है। वन्य पशु-पक्षियों को देखिए, क्या उनमें से एक भी बीमार दिखाई पड़ता है? हिरनों के झुंड, वन गौओं के समूह गेंद से उछलते फिरते हैं। सुअर, हाथी, घोड़े, भैंस, रीछ, बाघ सभी कोई पशु पूर्ण निरोगिता उपलब्ध करते हैं। कबूतर, मोर, बतख, तोता, कौआ, कोयल, मैना, बुलबुल, तीतर, बाज कैसे फुदकते फिरते हैं। मगरमच्छ, कछुआ, मेंढक जल में कैसी कलोल करते हैं। कभी किसी का न तो सिर दुखता है, न बुखार आता है, न गठिया होती है और न तिल्ली बढ़ती है। जब तक वे जीते हैं, पूर्ण निरोगिता के साथ जीते हैं, जब आयु पूर्ण हो जाती है, तो आसानी से शरीर त्याग देते हैं। डॉक्टरों, वैद्यों की उन्हें जरूरत नहीं पड़ती, दवाओं की बोतलें भी वे बेचारे नहीं पीते, कोई आरोग्य शास्त्र श्रवण करने का सौभाग्य भी नहीं मिलता, स्वास्थ्यवर्धक स्थानों की यात्रा एवं

सेनेटोरियमों का उपचार भी नसीब नहीं होता, तो भी वे सदैव स्वस्थ रहते हैं। जिन पशु-पक्षियों को मनुष्य के बंधन में बँध जाने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है, वे बेचारे अपने मालिकों की हरकतों के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य खो बैठे हैं। तो भी वे बहुत अंशों में अपने मालिकों की अपेक्षा अच्छे रहे हैं, वे कम अस्वस्थ होते हैं और कम ही बीमार पड़ते हैं।

विचार करने योग्य बात है कि पशु-पक्षी नीरोग क्यों रहते हैं और मनुष्य बीमार क्यों रहा करता है? पूर्ण स्वस्थ मनुष्य दस प्रतिशत भी न मिलेंगे, पर अन्य जीव-जंतुओं में एक प्रतिशत भी अस्वस्थ न मिलेंगे। मनुष्य स्वास्थ्य की रट लगाए रहता है, बहुत दौड़-धूप करता है, सारी बुद्धि लड़ाता, काफी पैसा बरबाद करता है, नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ, वस्त्र, सवारी, सुविधा जुटाता है, नित नई खोजें करता है, फिर भी दिन-दिन सफलता से पीछे हटता जाता है, दिन-दिन स्वास्थ्य में अवनति होती जाती है। पशु-पक्षी बेचारे सरदी-गरमी से बचने के लिए कपड़े नहीं पहनते, तो भी न उन्हें लू सताती है और न निमोनिया होता है। जो कुछ घास-पात मिल जाता है, उसी को खाकर हट्टे-कट्टे रहते हैं, सुअर को न तो घी खाने को मिलता है न दूध, मामूली भोजन करके भी वह पसेरियों चरबी अपने में जमा कर लेता है।

बल और सुंदरता का स्रोत आरोग्य के अंदर निहित है। यदि स्वास्थ्य ठीक है, तो वह मनुष्य बलवान भी होगा और सुंदर भी दीख पड़ेगा। इसलिए ताकत बढ़ाने की दवाएँ खाने या गोरे बनने का पाउडर मलने की अपेक्षा यह अच्छा है कि अपने को नीरोग, स्वस्थ दशा में रखने का प्रयत्न किया जाए। स्वास्थ्य विज्ञान के आचार्य वरनर मेकफेडन का कथन है कि—"स्वस्थ रहने के नियम बहुत ही थोड़े हैं और बहुत ही आसान हैं, उनको सीखने के लिए न कोई शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता है और न किसी प्रयोगशाला में जाने की। जरूरत केवल इस बात की है कि हद से ज्यादा जो

अक्ल बढ़ गई है, उसको प्रकृति पर न अजमाया जाए। अपने साथ शरीर पर जुल्म ज्यादती करने से बाज आया जाए।''

यदि आप प्रकृति को अपनी बुद्धिमती माता मान लें और उसके आदेशों पर चलना स्वीकार करें, तो विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि आप भी उसी प्रकार स्वस्थ रह सकते हैं जैसे सृष्टि के अन्य जीव-जंतु नीरोग शरीर लेकर किलकारियाँ मारते फिरते हैं। आप स्वास्थ्य चाहते हैं, तो उसकी तलाश भीतर कीजिए, अंतर्दृष्टि से इस बात का पता लगाइए कि प्रकृति माता की किन-किन आज्ञाओं की अवहेलना कर रहे हैं और अपने साथ क्या-क्या ज्यादतियाँ हो रही है? जिनका पता चलता जाए उन्हें बिना एक पल की देर किए तुरंत ही छोड़ दीजिए। उलटे मार्ग पर चल रहे हैं, जिस क्षण इस बात का पता चले उसी क्षण खड़े हो जाइए और वहाँ से वापस लौटकर फिर सीधे मार्ग पर चलना आरंभ कर दीजिए।

आहार और विहार स्वास्थ्य के इन दो स्तंभों का गंभीरतापूर्वक निरीक्षण करके पता लगाइए कि इसके संबंध में हम कहाँ लापरवाही कर रहे हैं? आहार के बारे में प्रकृति के आदेश बहुत ही स्पष्ट होते हैं, उन्हें सुनने और समझने में कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ती। भोजन कब करना चाहिए? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि—''जब पेट माँगे, जोर की भूख लगे।'' बिना भूख न खाना एक ऐसा स्वर्ण सिद्धांत है जो निरोगिता की जीवनभर रक्षा कर सकता है। जब तक कड़ाके की भूख न लगे, कुछ मत खाइए। पेट जब तक पिछले काम को समाप्त न कर ले, तब तक उस पर नया बोझ मत डालिए। आपका नौकर बताए हुए काम को कर रहा है। वह काम तो पूरा हुआ नहीं, तब तक नया काम और दे दिया। पिछले दो काम पूरे न हो पाए थे कि तीसरा काम फिर पटक दिया। फल यह होता है कि नौकर एक भी काम को अच्छी तरह नहीं कर पाता, सब काम अधूरे पड़े रहते हैं। काम की भरमार से करने वाले की शक्ति बहुत अधिक खरच हो जाती है, जिससे वह और कामों को भी जल्दी

और ठीक समय पर करने में असमर्थ हो जाता है। भूख न लगने पर भी खाना, पेट के साथ बेइंसाफी करना है, चटोरे आदमी यह नहीं देखते कि पचाने वाले को नए काम की जरूरत है या नहीं। वे अंधाधुंध ठूँसते चलते हैं। एक पतीली में चावल पकाने रखा जाए, उसमें बीस-बीस मिनट बाद दो-दो मुट्ठी नए चावल डालते जाएँ, तो परिमाण यह होगा कि कुछ चावल तो जरूरत से ज्यादा पककर धुल जाएँगे, कुछ अधपके रहेंगे, कुछ बिलकुल कच्चे, इस प्रकार पकाया हुआ भात किसी को पसंद न आएगा, पेट में आधा कच्चा, आधा पक्का जमा करते जाना बहुत ही अनुचित है। नियत समय पर भोजन कर लीजिए और फिर तब तक एक दाना भी मुँह में मत जाने दीजिए, जब तक कि पेट को नए भोजन की जरूरत न हो। पुराना काम समाप्त कर लेने पर नया काम दीजिए।

कितना खाएँ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पेट को आधा अन्न से भरिए, एक-चौथाई पानी के लिए और एक-चौथाई हवा आने-जाने के लिए खाली रहने दीजिए। यह बहुत ही गलत विचार है कि जो अधिक खाएगा वह अधिक बलवान बनेगा। सच बात यह है कि आमतौर से जितना आहार लोग करते हैं उससे आधे को पचाने की ही शक्ति उनमें होती है, लेकिन '**अधिकस्य अधिकं फलम्**' की नीति के अनुसार जितना अधिक खा सकते हैं उतना खाते जाते हैं। यदि दो मन बोझ उठाने वाले के ऊपर पाँच मन लाद दिया जाए, तो उसका बुरा हाल हो जाएगा। यदि उससे ठीक तरह काम लेना है तो दो मन के स्थान पर डेढ़ मन ही वजन रखना चाहिए। अधिक खाने से बल बढ़ता नहीं, वरन् घटता है। बलवर्धक वही भोजन हो सकता है, जो आसानी से पचकर शरीर में घुल जाए। जो बिना पचे, पेट की बहुत-सी शक्तियों को नष्ट करके, कच्चा ही मलरूप में निकल जाए वह कितना ही उत्तम भोज्य पदार्थ क्यों न हो कुछ भी लाभकर सिद्ध न होगा। भोजन द्वारा अच्छा रक्त तब बनता है, जब वह भली प्रकार पच जाए। इसलिए आप

बढ़िया भोजन की तलाश में व्याकुल मत फिरिए। यदि जौ, चना की रोटी मिलती है, तो उसे प्रेमपूर्वक खाइए, वह हलुआ और रबड़ी से अधिक उपयोगी सिद्ध होगी, बशर्ते कि उसे पेट को खाली रखकर खाएँ। यदि कोई गरिष्ठ, भारी, भोजन सामने आता है और उसे खाए बिना गुजर नहीं तो प्रसन्नतापूर्वक खाइए, परंतु ध्यान रखिए, आधे पेट तक ही उसे स्थान दिया जाए। भोजन के बाद पेट में इतनी जगह रखनी चाहिए कि यदि भागने का अवसर आए तो उससे विघ्न उपस्थित न हो।

क्या खाएँ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—"अपने असली रूप में जो वस्तुएँ जिह्वा के रुचिकर हों।" इस दृष्टि से फल उत्तम भोजन है। गरीब आदमी भी सस्ते ऋतुफलों को भोजन में प्रमुख स्थान देकर, स्वस्थ रह सकता है। इसके बाद रसीली सजीव वस्तुओं का नंबर है। दूध बहुत उत्तम भोजन है। शाक-सब्जी मामूली अग्नि संस्कार द्वारा काम चलाने योग्य बना लेने चाहिए। स्मरण रखिए, जो भोजन जितना ही अग्नि पर अधिक पकाया जाता है, वह उतना ही निरर्थक हो जाता है। उसके उपयोगी तत्त्व अग्नि में जल या झुलस जाते हैं और छूँछ बच रहती है। जहाँ तक संभव हो प्राकृतिक दशा में प्राप्त होने वाला सजीव, रसीला भोजन करना चाहिए। न मिलने पर सूखी वस्तुओं से काम चलाया जा सकता है। फिर भी जहाँ तक हो उनके पोषक तत्त्वों को कम-से-कम मात्रा में नष्ट करने का अवसर आने देना चाहिए। छिलके सहित अन्न और दालों का प्रयोग करना चाहिए।

मिर्च-मसाले, चाट-पकौड़ी, सोडा, पान, तंबाकू, अफीम, भाँग, मांस, मदिरा आदि ऐसी अप्राकृतिक चीज हैं जिन्हें खाने से शरीर का अहित छोड़कर और कुछ हो ही नहीं सकता। हानिकारक वस्तुएँ वे हैं जो पकाने में बहुत जला दी जाती हैं, जिनमें घी बहुत अधिक हो, तेल में तली हुई, बासी, मिर्च-मसालों से भरी हुई तथा ऐसी सूखी जो खाने में कड़कड़ चबाई जाएँ। कौन भोजन हमारे

लिए हितकर है, इसकी सबसे उत्तम कसौटी जिह्वा है। परमात्मा ने यह डॉक्टर मुँह के दरवाजे पर नियुक्त कर दिया है। जो हर चीज की जाँच करता है कि यह वस्तु हमारे लिए खाद्य है या अखाद्य। जो चीजें अपने प्राकृतिक रूप में बिना किसी रूपांतर के हमारी जिह्वा को रुचिकर हों, वही सर्वोत्तम भोजन है।

कैसे खाएँ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—"दाँतों से खूब कुचल-कुचलकर खाइए। ग्रास को मुँह में इतना पीसिए कि बिलकुल पिस जाए और लार का पर्याप्त समावेश हो जाए, निगलने में जरा भी जोर न पड़े। बड़े-बड़े ग्रास निगल जाने से दाँतों का काम आँतों को करना पड़ता है, जिससे पाचन क्रिया में बड़ी बाधा पड़ती है। यदि दूध, पानी जैसी पतली चीजें उदरस्थ हों, तो भी उनमें लार का मिश्रण करने के लिए हर घूँट को तीन चार बार मुँह के भीतर घुमाइए तब पेट में जाने दीजिए। एक गिलास दूध पीने में कम-से-कम दस-पंद्रह मिनट लगने चाहिए।"

"भोजन में अमृत की भावना करना" यह एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण नियम है। जो वस्तु आपके सामने आए उसे ईश्वर का भेजा हुआ अमृतमय प्रसाद समझकर खाइए। हर ग्रास में '**अमृत-मिदं**' की भावना करते जाइए। सामंने आए हुए अन्न को मन-ही-मन प्रणाम करो, प्रभु प्रसाद की तरह आदरणीय दृष्टि से देखो और विश्वास कर लो कि यह अन्न मेरे शरीर को जीवनी शक्ति प्रदान करेगा, बल और दीर्घायु देगा, इन भावनाओं के साथ जो अन्न खाया जाएगा, वह रूखा-सूखा होने पर बड़ा मधुर लगेगा और सेरों विटामिन से अधिक उपयोगी होगा।

कब खाएँ, कितना खाएँ, क्या खाएँ, कैसे खाएँ? इन चारों प्रश्नों का उत्तर हृदयंगम कर लेने के उपरांत तदनुसार किया हुआ भोजन चाहे वह कितना ही घटिया दरजे का क्यों न हो, अनिश्चित ढंग से खाए हुए बढ़िया भोजन की अपेक्षा कहीं अधिक लाभप्रद होगा। अपने देश की गरीबी और प्रतिदिन की औसत आमदनी को

देखते हुए कीमती भोजनों की विटामिन सूची प्रकाशित करना निरर्थक है। औसत दरजे के ९० प्रतिशत लोग जिनके लिए यह पुस्तक लिखी जा रही है, महँगे मूल्य पर मिलने वाला भोजन नहीं प्राप्त कर सकते। जो कुछ भी रूखा-सूखा आज की स्थिति में मौजूद है, उसे ही यदि ढंग से खाया जाए तो निस्संदेह स्वस्थता को कायम रखा जा सकता है। गरीब किसान और मजदूर पेट पर अन्याय न करने की विशेषता के कारण मजबूत बने रहते हैं।

भोजन के बाद व्यायाम का नंबर आता है। शरीर के हर एक कलपुरजे को इतनी मेहनत जरूर करनी चाहिए जिससे यहाँ का रक्त-संचार ठीक बना रहे। किसी मशीन को निकम्मा पड़ा रहने दिया जाए तो उसके कलपुरजों में धूल जमने लगती है, जंग लगना शुरू हो जाता है। शरीर को यदि निकम्मा पड़ा रहने दिया जाए तो उसकी क्रियाशक्ति घट जाती है। इसी प्रकार यदि कोई खास अंग मेहनत से बचे रहें, तो उसकी शक्ति में भी कमी आ जाती है। धूलि की तरह बीमारियों के विष जमा हो जाते हैं। जंग लगने से लोहा जैसे गलने लगता है वैसे ही वे अंग क्षीण होने लगते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हर एक कलपुरजे को दुरुस्त रखने के लिए नित्य व्यायाम किया जाए। जो लोग हाथ-पाँवों की कड़ी मेहनत करते हैं, उन्हें भी पेट, फेफड़े, नेत्र आदि का व्यायाम करना चाहिए। इस छोटी पुस्तक में व्यायाम की विस्तृत पद्धतियों का उल्लेख नहीं हो सकता, इसके लिए कोई स्वतंत्र पुस्तक लिखेंगे। यहाँ तो इतना बता देना ही पर्याप्त होगा कि व्यायाम ऐसा होना चाहिए जिससे कम काम करने वाले अवयवों पर भी प्रभाव पड़े। आसानी के व्यायाम इस दृष्टि से बहुत ही उपयोगी हैं। सर्वांगासन, शीर्षासन, हलासन, पश्चिमोत्तानासन और धनुरासन साधारणतः बहुत ही उपयोगी साबित हुए हैं। इसके अतिरिक्त जिन्हें जिस प्रकार के व्यायाम में सुविधा हो, कर सकते हैं। व्यायाम का समय प्रातःकाल सूर्योदय के आस-पास होना चाहिए। मनोभावनाओं का समावेश

किए बिना यह क्रियाएँ अधूरी रह जाती हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि कसरत के साथ आप यह भावना करते जाएँ—"इस क्रिया से मैं शक्ति प्राप्त कर रहा हूँ, बल की वृद्धि हो रही है, अंग सुदृढ़ हो रहे हैं।" हलका व्यायाम भी यदि उपर्युक्त भावनाओं की दृढ़ता के साथ किया जाए, तो आशातीत लाभ होता है। दुर्बल, वृद्ध, गर्भिणी स्त्रियाँ हलके व्यायाम करते हुए भी यदि "शक्ति लाभ हो रहा है" इस विश्वास को दृढ़ रखें, तो कठोर व्यायामों जितना ही फल प्राप्त हो सकता है।

शरीर का ढाँचा जिस ढंग का बन चुका है, उसमें रद्दोबदल होना कठिन है। बालकपन में ढाँचे का निर्माण होता है। इसके बाद उसमें बहुत अधिक अंतर नहीं किया जा सकता। इकहरे बदन के व्यक्ति चाहे कितनी ही कीमती चीजें खाएँ, रहेंगे इकहरे ही। इसलिए मोटे बनने की मृगतृष्णा में न भटककर स्वस्थ और नीरोग रहने का ही प्रयत्न करना चाहिए। यदि ढाँचा बदल नहीं सकता तो कोई चिंता की बात नहीं, साधारण स्वस्थता पर ही संतुष्ट रहिए और आरोग्य की रक्षा का प्रयत्न करते रहिए। यदि तंदुरुस्ती ठीक तरह कायम रहे, तो अंगों की मजबूती और सुडौलता में अपने आप तरक्की होती है।

तीसरा नंबर सफाई का है। आपका शरीर साफ रहना चाहिए। नित्य स्वच्छ जल से शरीर को खूब रगड़-रगड़कर स्नान करना आवश्यक है। रोमकूपों से पसीने द्वारा शरीर के भीतरी विष निकलते रहते हैं। पसीना सूखने से उन विषों की एक पतली-सी तह शरीर पर जमने लगती है। यह तह जब कुछ मोटी हो जाती है, तो रोमकूपों का मुँह बंद कर देती है जिससे भीतरी विषों का बाहर निकलना रुक जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि मोटे खुरदरे तौलिये से शरीर के हर एक हिस्से को इतना रगड़ा जाए कि त्वचा लाल हो जाए, मैल बिलकुल छूट जाए, रोमकूप अच्छी तरह खुल जाएँ। जंघाओं के आस-पास के स्थान भी रगड़ने से छूटने न पाएँ। चार

लोटा पानी लुढ़काकर नहाने की लकीर पीटना बेकार है, इससे तो जमा हुआ मैल फूलकर सड़न एवं बदबू बढ़ाता है। शरीर के सभी छिद्र द्वारों से भीतर के गंदे पदार्थ बाहर निकलते रहते हैं, इसलिए उस गंदगी को साफ करने का विशेषरूप से ध्यान रखना उचित है। दाँत और जीभ पर जो मैल जमता है, उसे दातौन करके भली प्रकार साफ करना चाहिए। कान, नाक, आँख, मूत्रेंद्रियों के छिद्रों पर जो कीट जमता है, उसकी सफाई के संबंध में भी सतर्क रहना चाहिए।

वस्त्र बिलकुल साफ रहने चाहिए। घर की लिपाई, पुताई, झाड़ू लगाना, मकड़ी के जाले जमा न होने देना, सामान तरतीब से रखना, सोने के कमरों को गंधदार सामान से रहित एवं हवा, रोशनी के लिए खुला रखना आवश्यक है। बरतन मँजे, धुले रहें, पानी छाना हुआ हो, तात्पर्य यह है कि शरीर को स्पर्श करने वाली, उससे संबंधित रहने वाली, हर एक वस्तु साफ, स्वच्छ और निर्मल रहने से मन की प्रसन्नता बढ़ेगी और गंदगी में उत्पन्न होने वाले रोग कीटों के घातक आक्रमण से बचे रहेंगे।

रात्रि को जल्दी सोना, प्रात:काल जल्दी उठना, परिश्रम उतना करना जितना कि शरीर में करने की शक्ति हो। जिस प्रकार काम न करने से शक्तियाँ शिथिल हो जाती हैं वैसे ही अति परिश्रम करने से वे क्षीण भी होती हैं। जिन्हें ताकत से बाहर काम करना पड़ता है, वे अल्पायु में ही काल के ग्रास बन जाते हैं। पेट को महीने में कम-से-कम दो दिन की छुट्टी भी देनी चाहिए। किसी नियत तिथि को पंद्रह दिन पीछे एक उपवास करने का क्रम बनाना चाहिए। उस दिन बिलकुल निराहार रहना चाहिए। हाँ, पानी खूब पीना चाहिए, जिससे भीतरी मैलों को धुलकर बाहर निकलने में सहायता मिले। सरदी-गरमी की अधिकता से बचाव कीजिए, पर जितनी सह सकते हैं, उतनी सहन कीजिए। इससे शारीरिक सहनशक्ति और रोग-निवारिणी शक्ति में वृद्धि होती है।

यह उँगलियों पर गिनने लायक नियम बिलकुल सादा और सुगम हैं। इनके लिए न तो कुछ खरच करने की जरूरत है और न कष्ट उठाने की। सिर्फ चटोरेपन पर संयम रखना है और जरूरत से ज्यादा बढ़ी हुई अक्ल को प्रकृति के विरुद्ध काम में लाने से बाज आना है। प्रकृति माता की बुद्धिमत्ता और दयाशीलता पर विश्वास करते हुए उसकी आज्ञाओं का पालन करना अपने लिए कल्याणकारी समझना चाहिए। आज्ञाकारी पुत्र को माता का स्नेह प्राप्त होता है, प्रकृति माता का अनुगमन करके आप उत्तम स्वास्थ्य का आनंददायक प्रसाद पा सकते हैं।

प्रकृति राज्य में सभी जीव-जंतु मादा की इच्छा होने पर उसे गर्भधारण करने के निमित्त कामसेवन करते हैं, अन्यथा अपनी ओर से नर की कोई कुचेष्टा नहीं होती। वीर्य शरीर का सार भाग है, उसके तेज से बल आरोग्य कायम रहता है, इस सार भाग को यदि कुचेष्टाओं से अनुचित मात्रा में व्यय किया जाएगा, तो यह कैसे संभव होगा कि स्वास्थ्य में स्थिरता बनी रहे। जिस पेड़ की जड़ों को नित्य काटा जाएगा, वह भला कितने दिन तक खड़ा रह सकेगा? बहुत शीघ्र उसे गिरने के लिए विवश होना पड़ेगा। इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए आप जहाँ तक संभव हो, अधिक-से-अधिक वीर्य-रक्षा का प्रयत्न करें, शरीर के बहुमूल्य सार भाग को नष्ट होने से बचाते हुए उसे स्वास्थ्य की जड़ें मजबूत करने में लगा रहने दें।

जब तक आप स्वास्थ्य के बारे में लापरवाही करते हैं, जब तक आधे मन से उसे चाहते हैं, तब तक कमजोरी और बीमारी से छुटकारा न पा सकेंगे। जिस दिन आप दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा कर लेंगे कि—"मुझे उन्नति और आनंद की प्रथम सीढ़ी आरोग्यता पर चढ़ना है।" उस दिन से आप में एक नवीन शक्ति का संचार होगा। सच्ची और सुदृढ़ आकांक्षा में अकूत शक्ति भरी हुई है। आप नीरोग बनने की और स्वस्थ रहने की तीव्र इच्छा कीजिए और उसे पूर्ण करने के लिए कमर कसकर खड़े हो जाइए। लापरवाही,

ढील-ढाल, चटोरेपन और कृत्रिमता को छोड़कर असली तत्त्व को प्राप्त करने, प्रकृति की आज्ञा पर चलने के लिए तत्पर हो जाइए। सर्वोपरि आवश्यकीय कार्य की तरह स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों को ध्यान रखिए और उसको बिना रत्तीभर उपेक्षा के दृढ़तापूर्वक पालन करिए। आप देखेंगे कि जो कार्य बोतलें भरी दवा से न हो सका, वैद्य, डॉक्टरों की खुशामदें करते-करते थक जाने पर भी पूरा न हुआ, बड़े-बड़े स्वास्थ्यशास्त्र घोट डालने पर भी सफल न हुआ वह कार्य आपकी तीव्र आकांक्षा और प्रकृतिसेवन से कितनी शीघ्रता और आसानी से पूरा हो गया। स्वस्थ रहना आपका जन्म सिद्ध अधिकार है। उठिए, खड़े हूजिए, अपने ईश्वरदत्त अधिकार को प्राप्त कीजिए और उसका आनंद उठाइए।

जब तक आप अपनी उन्नति के लिए, समृद्धि के लिए, सुख-शांति के लिए बाहर तलाश करते हैं, तब तक आप को बार-बार निराश होना पड़ता है और नाममात्र की सफलता हाथ लगती है, पर जब आप इसके लिए अपनी अंतरंग शक्तियों को टटोलना आरंभ करते हैं, तब समझना चाहिए कि अब ठीक रास्ता मिल गया।

# आद्यशक्ति की उपासना से जीवन को सुखी बनाइए

विभिन्न प्रकार की महत्ताओं की जननी तीन शक्तियाँ ठहराई गईं हैं। उन तीनों को जो जिस मात्रा में उपार्जित कर लेता है, वह उतना ही उन्नतिशील कहलाता है। भगवती आद्यशक्ति की तीन रूपों में पूजा की जाती है—(१) महासरस्वती, (२) महालक्ष्मी, (३) महाकाली। शिव के साथ में शक्ति का संयोग है। भगवान शंकराचार्य ने यह कहा है कि शक्ति के बिना शिव का स्पंदन नहीं होता। जीव की उन्नति देह की सहायता से होती है, वैसे ही शिवतत्व का स्पंदन भक्ति द्वारा होता है। भक्ति के बिना ईश्वर नहीं मिलता, शक्ति के बिना शिव नहीं मिलता। कल्याण का मार्ग प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मप्राप्ति में, आत्मिक उन्नति में, भगवती आद्यशक्ति की सहायता आवश्यक है। अशक्त मनुष्य, बातूनी छप्पर बाँध सकते हैं, पर वस्तुतः प्राप्त कुछ नहीं कर सकते। सांसारिक आनंद से लेकर ब्रह्मानंद तक मातेश्वरी शक्ति का ही प्रसाद है।

भारतीय अध्यात्मशास्त्र में महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली—इन तीन महाशक्तियों की उपासना का बड़ा माहात्म्य गाया गया है। इनकी कृपा से अनेकानेक सिद्धि-संपदाएँ प्राप्त होने का फल बताया गया है। सविस्तार इनकी आराधना का वर्णन है। महासरस्वती का अर्थ है—विद्या, बुद्धि, तर्क, विवेचना, जानकारी, चतुराई। महालक्ष्मी का अर्थ है—धन, संपत्ति, जमीन, जायदाद। महाकाली का अर्थ है—शत्रु को दमन करने वाली शक्ति, तलवार,

कूटनीति, दलबंदी। इन तीनों शक्तियों की महत्ता हमारे आध्यात्मिक आचार्यों ने बहुत प्राचीनकाल में जान ली थी और समझ लिया था कि जिस व्यक्ति को, जिस जाति को, जिस राष्ट्र को जीवित रहना है, किसी भी दशा में उन्नति करनी है, उसे इन तत्त्वों का अवलंबन अवश्य ग्रहण करना पड़ेगा। यही कारण है कि त्रिशूलधारिणी भगवती शक्ति की आराधना की जाती है। जो ठीक तरह से उसकी उपासना करते हैं, उन्हें मातेश्वरी का प्रसाद प्राप्त होता है।

हिंदू धर्म वास्तव में कवियों का, चित्रकारों का, कलाकारों का धर्म है। इसमें हर बात का अलंकारिक चित्ररूप में वर्णन किया गया है। देवी-देवताओं के कथा-उपाख्यानों के बड़े-बड़े रोचक वर्णन जो पुराणों में भरे पड़े हैं, मोटी दृष्टि वालों को वे गपोड़े दिखाई पड़ते हैं। परंतु वास्तव में ऐसी बात नहीं है, हमारी प्राचीन शैली यह रही है कि किसी तथ्य को एक चित्ररूप में चित्रित करके अलंकारिक भाषा में उसका वर्णन किया जाए और उसमें एक महत्त्वपूर्ण रहस्य छिपा दिया जाए, उस उपाख्यान में से, शब्द चित्र में से, उस रहस्य को ढूँढ़ने का प्रयत्न श्रोता और पाठकगण करें और बुद्धि पर जोर देकर यह पता लगाएँ कि इस कलापूर्ण रचना में क्या महत्त्व सन्निहित है। इस पद्धति से शिक्षा देने वाले कलाकार रचयिता को एक मजा आता था और अपनी बुद्धि खरच करके तथ्य को ढूँढ़ निकालने वाले श्रोता और पाठकगणों को भी अपनी खोज-सफलता पर हर्ष होता था। हर्ष वृद्धि के साथ-साथ इस पद्धति से दी हुई शिक्षा, अंतस्तल में गहरी उतर जाती थी। उसे भुला देना इतना आसान न होता था, जितना कि आजकल की बाजारू शब्दावली को लोग इस कान से सुनकर उस कान में से निकाल देते हैं। महाशक्ति के उपरोक्त तीन स्वरूपों को देवियों के सुंदर चित्र की तरह प्रकट करना ऐसा ही कलामय प्रयास है।

आज वस्तु स्थिति को समझने की योग्यता का स्थान अंध विश्वास ने ग्रहण कर लिया है। अल्प बुद्धि के लोग समझते हैं कि

सरस्वती, लक्ष्मी, काली कोई दिव्य स्त्रियाँ हैं। जिनके हाथ-पैर तो हैं, पर अदृश्य रहती हैं, भक्तों को दर्शन देती हैं, माला जपने, अनुष्ठान करने, गंध, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, चढ़ाने से प्रसन्न हो जाती हैं और भक्त के घर में चुटकी बजाने भर के अंदर एक क्षण में मनमानी संपदाएँ रख जाती हैं। इसी अंध विश्वास के आधार पर जो लोग प्रतिमा की पूजा तक ही अपना कर्तव्य समाप्त हुआ समझते हैं और जंत्र, मंत्र की शक्ति से देवों के प्रसन्न होने पर अनायास सब संपदाएँ घर में भर जाने की आशा करते हैं, उनके शेखचिल्ली के स्वप्न पूरे नहीं हो सकते। वास्तविकता को जानकर उचित मार्ग से प्रयत्न करने पर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है। उपरोक्त महाशक्तियों का प्रचंड वरदान आप प्राप्त कर सकते हैं, बशर्ते कि अंध विश्वास की अपेक्षा विवेक द्वारा उन्हें प्राप्त करने और प्रसन्न करने का प्रयत्न करें।

भगवती सरस्वती एक हाथ में वीणा दूसरे में पुस्तक लिए हुए चित्रित की गई हैं। पुस्तक का तात्पर्य स्पष्ट है, अच्छे साहित्य का अध्ययन किए बिना विचार शृंखला का परिमार्जित होना कठिन है। संसार के उच्चकोटि के विचारक और तत्वदर्शी अपने गंभीर ज्ञान को पुस्तकों में छोड़ गए हैं या छोड़ रहे हैं, उनके विचारों का अध्ययन करना एक प्रकार से उनकी समीपता प्राप्त करना, सत्संग का लाभ उठाना है। ज्ञान कोष को भरने के लिए अन्य लोगों के अनुभव और अन्वेषण का निरीक्षण आवश्यक है, यह कार्य पुस्तकों की सहायता से ही हो सकता है। ज्ञानी बनने के लिए अध्ययन प्रेमी होना अनिवार्य है। दूसरे हाथ में वीणा का होना प्रकट करता है कि आपके भावना तंतु झंकृत होते रहने चाहिए। विद्या शुष्क पांडित्य के लिए नहीं है, उसका सदुपयोग यह है कि वह अपने सात्विक प्रभावों से आपके अंत:करण के तारों को झनझना दे। अध्ययन, मनन, निदिध्यासन द्वारा आप जिस निष्कर्ष पर पहुँचें, उस पर विश्वास करें, श्रद्धा करें और तदनुसार जीवन को ढालने का प्रयत्न

करें, विश्वास और आचरणों में एकता रखें, ज्ञान का वास्तविक लाभ उठाएँ। हंस वाहिनी शारदा की वीणा पुस्तकप्रियता यह प्रकट करती है कि विद्या चाहने वाले, विद्वान बनने की इच्छा करने वाले लोगों को चाहिए कि पुस्तकों का अध्ययन करना अपना दैनिक कार्यक्रम बनाएँ, नित्य पढ़ने की आदत डालें, जो ज्ञान प्राप्त करें, उससे अपनी हृदय वीणा के तारों को झंकृत करते हुए ज्ञान का श्रद्धा और आचरण के साथ संबंध जोड़ें, यही सरस्वती पूजा का सरल-सा किंतु अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण विधान है, जिसे कलाकार ने चित्र रूप में हमारे सामने उपस्थित किया है।

हंस वाहिनी महासरस्वती का उपासक हंस जैसा नीर-क्षीर विवेकी होना चाहिए। दूध से पानी को निकाल देने की वृत्ति अपने अंदर धारण करने से सत्-असत् का विवेक होता है। संसार में सब माल बेतरतीब भरा पड़ा है, इस कटपीस की गठरी में अच्छे टुकड़े हैं और खराब भी, यह लेने वाले की समझ के ऊपर है कि वह काम लायक बढ़िया चीज पसंद करता है या निकम्मी बेमतलब की उठा लाता है। सभी मजहबों में अच्छे-बुरे विचार मौजूद हैं, समयानुसार हर एक के तत्वों का प्रवेश हुआ है। आज की स्थिति के योग्य जिस धर्म में जो बात प्राप्त होती है, उसे ग्रहण कर लीजिए और जो बातें समय से पीछे की होने के कारण निरुपयोगी हो गई हैं, उन्हें निकाल दीजिए। कुछ घंटे पहले का दूध अब जमकर दही हो गया है। हलवाई इस दही में से जो पानी छूटता है, उसे निकालकर फेंकता जाता है और जमा हुआ भाग ग्राहकों को बेचता है। कुछ देर पहले जब यही दही दूध की शकल में था, तब उसमें से पानी छाँटकर फेंकने की जरूरत न थी, पर अब समय बदल जाने के कारण स्थिति दूसरी हो गई। पानी मिला दूध तो उस समय बिक सकता था, पर अब दही के साथ छटा हुआ पानी नहीं बेचा जा सकता। प्राचीन धर्म ग्रंथ, उपदेश, विचार, रीतिरिवाज, अपने समय के लिए बहुत उपयोगी, लाभदायक और आवश्यक थे, पर यदि आज

परिस्थितियाँ बदल गई हैं, तो उन्हीं बातों को स्वीकार कीजिए जो आज की स्थिति में उपयोगी हैं। इस प्रकार यदि आप अपनी वृत्ति को हंस के समान नीर-क्षीर, विवेक करने वाली रखेंगे, अंध विश्वासों से अपने को सावधानी के साथ बचाएँगे, तो बुद्धिमान बनते जाएँगे, भगवती सरस्वती के कृपा पात्र वाहन-हंस का पद प्राप्त करते जाएँगे।

बुद्धि वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि किसी एक ही बात पर दुराग्रह न किया जाए, अपनी ही बात को सबसे ऊँची रखने का हठ न किया जाए, वरन खुले हृदय जिज्ञासु की तरह निष्पक्ष, सत्य शोधक की तरह बुद्धिसंगत बात को स्वीकार करने एवं भूल को सुधारने के लिए तैयार रहेंगे, तो अपने ज्ञान में दिन-दिन वृद्धि करते जाएँगे। 'हमारी बात ठीक और सबकी झूठी'—यह विचार पद्धति जिन्होंने अपना रखी है, वे अपने ज्ञान और विवेक में कभी भी उन्नति न कर सकेंगे।

जो लोग अपना विवेक और अनुभव बढ़ाना चाहते हैं, उन्हें चुनाव करने की और शिक्षा ग्रहण करने की पद्धति को अपनाना चाहिए। किसी वस्तु की उपयोगिता-अनुपयोगिता जानने का तरीका यह है कि उसके समतुल्य अन्य वस्तुएँ विचारार्थ सामने रखिए और उनमें से हर एक के गुण-अवगुणों पर विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए तब उनमें से जो वस्तु अधिक उपयोगी सिद्ध हो, उसे चुन लीजिए। बिना विचारे भावावेश में किसी बात के अंध अनुयायी हो जाना उचित नहीं, इससे मस्तिष्क की तेजस्विता जाग्रत नहीं होती और न सर्वोत्तम वस्तु के प्राप्त होने की ही संभावना रहती है। जो काम आपको करना है, केवल उसके लाभों को ही मत गिनिए, ऐसा करेंगे तो धोखा खाएँगे, लाभ के साथ हानियों को भी सोचना-समझना है, कठिनाइयों पर भी दृष्टिपात करना है, सब पहलुओं पर विचार करने के उपरांत जो निर्णय करते हैं, जो चुनाव करते हैं, वह मजबूत होगा और ऐसा होगा जिसके लिए शायद ही पश्चात्ताप करना पड़े।

जो घटनाएँ आपके चारों ओर घट रही हैं, जो घटनाएँ भूतकाल में घट चुकी हैं, उनको उपेक्षा की दृष्टि से मत देखिए, वरन जहाँ तक हो सके हर एक पर पैनी नजर फेंकते चलिए और यह विचार करते चलिए कि किन कारणों से ऐसे अवसर उपस्थित हुए या होते हैं। उन कारणों का सामयिक परिस्थितियों से कितना सामंजस्य है? इस गंभीर अवलोकन से आप कुछ निष्कर्ष निकाल सकेंगे, कुछ अनुभव प्राप्त कर सकेंगे। वह निष्कर्ष और अनुभव धीरे-धीरे इतने अधिक एवं दृढ़ हो जाएँगे कि उनके आधार पर भावी जीवन का बहुत कुछ निर्माण हो सकेगा। आप बीती के आधार पर अधिक अनुभव इकट्ठे नहीं हो सकते, अनुभवी और विशेषज्ञ बनना है, तो दूसरों पर बीती हुई बातों का विश्लेषण करने पर जो शिक्षा मिलती है, उसे ग्रहण करके अपनी योग्यता में वृद्धि करनी चाहिए।

वस्तु स्थिति को समझने की गलती तथा दोषपूर्ण विचारधारा के कारण अधिकांश दुःखों का आविर्भाव होता है। कोई सगा-संबंधी मर जाने पर आप सिर धुन-धुनकर रोते हैं, भोजन त्याग देते हैं, सूख-सूखकर काँटा हो जाते हैं, यह विपत्ति आपकी अपनी उत्पन्न की हुई है। हर प्राणी का मरण निश्चित है। इसी प्रकार आपके संबंधी का भी मरण अनिवार्य था। सूर्य को डूबना ही है, यदि उसे अस्त होता देखकर रोएँ-पीटें, तो भी वह अपना क्रम न रोकेगा। आप भ्रमवश मान लेते हैं कि सूरज सदा चमकता ही रहेगा और उससे ऐसी ही आशा करते हैं, जब आशा के अनुकूल फल नहीं निकलता, तो रोते-चिल्लाते हैं। इसके शोक में मरने वाला व्यक्ति कारण नहीं है, क्योंकि वह तो उसी स्वाभाविक राजपथ से गया जिससे सभी को जाना पड़ता है। दोष उस दृष्टिकोण का है, जिसने मरणशील प्राणी को अमर समझ कर नाना प्रकार की आशाएँ बाँध रखी थीं। जिसको अपनी आशाओं के महल अधिक टूटते दीखते हैं, वह अपनी असफलता पर अधिक रोता है। जिसका मृत व्यक्ति से जितना अधिक स्वार्थ था वह उतना ही अधिक दुःखी

होता है। जिसने उससे कुछ आशाएँ नहीं बाँध रखी थीं, कुछ स्वार्थ नहीं जोड़ रखे थे, उसे दुःख क्यों होगा? रोजाना अनेक मुरदे निकलते और जलते हम देखते हैं, पर एक बूँद भी आँसू नहीं निकलते, पर जब अपना स्वार्थ संबंधित मनुष्य मरता है, तो रो-रो कर व्याकुल हो जाते हैं।

यदि अध्यात्म ज्ञान की उचित शिक्षा प्राप्त करके अपने हर एक प्रियजन को मृत्यु के मुँह में लटका हुआ समझें और उसके ऊपर आशाओं के महल खड़े न करके कर्तव्य भावना से उसके साथ अपना धर्म निबाहने का दृष्टिकोण रखें, तो विश्वास रखिए उसकी मृत्यु के समय कुछ भी कष्ट न होगा। जिस पर ममत्व नहीं है, वह वस्तु नष्ट हो जाने पर कौन दुःख मानता है? यदि भौतिक वस्तुओं पर आपका ममत्व न हो, अपने को उनका मालिक न समझा करें, सेवक-संरक्षक मानें, तो प्रियजनों के बिछोह, चोरी, हानि आदि के कारण उत्पन्न होने वाले दुःख-शोकों से सरलतापूर्वक बच सकते हैं। 'संसार की हर वस्तु नाशवान है, उसका किसी भी क्षण नाश हो सकता है, मेरा कर्तव्य यह है कि प्राप्त वस्तुओं के प्रति निर्लिप्त भाव से अपनी जिम्मेदारी पूरी करता रहूँ।' यह ज्ञान यदि दृढ़तापूर्वक हृदय में बैठ जाए, तो मानसिक क्लेशों का अंत हुआ ही समझिए।

शारीरिक स्वास्थ्य की अवनति या बीमारियों की चढ़ाई अपने आप नहीं होती, वरन उसका कारण भी अपनी भूल है। आहार में असावधानी, प्राकृतिक नियमों की उपेक्षा, शक्तियों का अधिक खरच, स्वास्थ्य नाश के यह प्रधान हेतु हैं। जो लोग तंदुरुस्ती पर अधिक ध्यान देते हैं, स्वास्थ्य के नियमों का ठीक तरह पालन करते हैं, वे मजबूत और निरोग बने रहते हैं। योरोप, अमेरिका के निवासियों के शरीर कितने स्वस्थ एवं सुदृढ़ होते हैं। हमारी तरह वे भाग्य का रोना नहीं रोते, वरन आहार-विहार के नियमों का सख्ती के साथ पालन करते हैं, बुद्धि और विवेक का उपयोग निरोगता के

लिए करते हैं, जिससे वे न तो बहुत जल्द बीमार पड़ते हैं, न दुर्बल होते हैं और न अल्पायु में मृत्यु के ग्रास बन पाते हैं। हमारे देश में ही देखिए, उच्च वर्ण वालों की अपेक्षा नीच वर्ण के लोग स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक गिरे हुए होते हैं, इसका कारण ईश्वर की अकृपा नहीं, वरन अज्ञानता और उपेक्षा है। अपने प्रयत्न से आप पुनः अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं और लापरवाही पर ही आरूढ़ रहें, तो शरीर को इससे भी बुरी हालत में ले जा सकते हैं। कुंजी अपने भीतर है, स्वास्थ्य के आप खुद मुख्तार हैं। कोई दूसरा इसमें क्या हस्तक्षेप कर सकता है? वैद्य-डॉक्टर सलाह दे सकते हैं, दवा दे सकते हैं, परंतु निरोगता की चाबी उन बेचारों के पास थोड़े ही है। वह तो अपने अंदर से ही ढूँढ़ निकालनी पड़ेगी।

धन उपार्जन, विद्याध्ययन और बुद्धि-वृद्धि यह तीनों संपदाएँ घोर परिश्रम, निरंतर प्रयत्न, सच्ची लगन और साहसपूर्ण उत्साह द्वारा प्राप्त होती हैं। जो लोग आज आपको अमीर दिखाई पड़ते हैं, वे यों ही अनायास नहीं बन गए हैं, उन्होंने जाँ-फिशानी से मेहनत की है, दिन-को-दिन और रात-को-रात नहीं समझा है। जिन्हें आप विद्वान देख रहे हैं, उन्होंने वर्षों सर खपाया है, मुद्दतों पुस्तकें रटी हैं, खेल-तमाशों से, यात्रा-विहार से, मनोरंजनों से अपने को बचाकर पढ़ने की धुन में लगे रहे हैं। जिन्हें आप बुद्धिमान देख रहे हैं, उम्होंने बुद्धिमानों की संगतियाँ की हैं, ठोकरें खाई हैं, बुद्धि को घोड़े की तरह चारों ओर दौड़ाया है, समस्याओं को सुलझाने में गंभीर मनन किया है, ज्ञान लाभ के लिए कष्ट कर प्रोग्रामों को अपनाया है। यदि वे लोग ऐसा न करते तो उनका धनवान, बुद्धिवान बनना संभव न था। उद्योगी पुरुषसिंह लक्ष्मी को पाते हैं और कायर पुरुष दैव, दैव पुकारते रहते हैं। यदि आप संपदाएँ प्राप्त करना चाहते हैं, तो वे उपहार की तरह किसी बाहर के आदमी से न मिलेंगी, वरन अपनी योग्यता और क्रियाशीलता द्वारा उन्हें प्राप्त करना पड़ेगा।

मित्रता, प्रतिष्ठा, प्रशंसा से लदा हुआ जिन्हें आप देखते हैं, जिनके बहुत से मित्र, भक्त, प्रशंसक पाते हैं, उनकी मानसिक दशा का निरीक्षण कीजिए। आप पाएँगे कि उनमें बहुत से ऐसे गुण हैं, जिनके कारण लोगों का मन उनकी ओर आकर्षित होता है, उन में बहुत-सी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे लोग लाभ उठाते हैं। उन्हें मुफ्त के माल की तरह प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा नहीं मिलती, वरन उसके अनुरूप अपने आपको बनाने के पश्चात उसके अधिकारी हुए हैं। गंध रहित पुष्प के पास भौंरे नहीं आते। अपने चारों ओर भ्रमरों को मधुर स्वर के साथ गूँजते फिरते देखने का सौभाग्य उन्हीं पुष्पों को प्राप्त होता है, जो अपने अंदर मन मोहिनी सुगंध छिपाए बैठे हैं। कमल के फूल पर यदि भौंरों के झुंड मँडराते रहते हैं, तो यह भौंरों की कृपा नहीं, कमल की विशेषता है। बिना गंध वाला कन्नेर पुष्प बेचारा अकेला एक कोने में ही पड़ा रहता है।

हम मानते हैं कि कभी-कभी किसी को अनायास भी बहुत-सी सुविधा-संपदा प्राप्त हो जाती है, जिन्हें भाग्य की देन कहा जाता है। यह अपवाद है। रास्ते में चलते हुए किन्हीं को रुपये-पैसे पड़े मिल जाते हैं, यह अपवाद है। इनसे यह सिद्धांत निश्चित नहीं किया जा सकता कि हर एक को रास्ते में पड़े पैसे जरूर ही मिलेंगे। अनायास मिलने में भी दो कारण होते हैं या तो पूर्व जन्म का संचित कर्मफल शेष होगा, जो अब प्राप्त हुआ है या अब कर्ज लिया जा रहा है, जो आगे चुकाना पड़ेगा। मुफ्त का माल तो एक रत्तीभर भी यहाँ नहीं मिल सकता। यदि पुराना संचित मिला है, बैंक में जमा पूँजी निकाल दी है, तो यह भी अपने उद्योग का फल हुआ। फिर बासी रोटी के ऊपर या कर्ज लेकर शान बनाने का गर्व करना व्यर्थ है। इसमें कोई गौरव की बात थोड़े ही है।

भाग्य एक आकस्मिक घटना है, जो अदृश्य कारणों से किन्हीं-किन्हीं के साथ कभी-कभी घटित हो जाती है। ऐसे एक-दो प्रतिशत

होने वाले अपवाद निश्चित नियम नहीं बन सकते, सिद्धांत रूप में वही बात स्वीकार की जाएगी, जो निन्यानवे, अठानवे प्रतिशत ठीक उतरती है। आत्म निर्भरता का सिद्धांत सच्चा है। मनोवांछित सफलता प्राप्त करने की कुंजी अपने अंदर है, यह सिद्धांत सच्चा है, क्योंकि सर्वत्र यही बात फलित होती दृष्टिगोचर होती है—'जो जिसका पात्र है, वह उसी वस्तु को प्राप्त करता है।'

आप अपने ऊपर विश्वास कीजिए, अपने ऊपर निर्भर रहिए। अध्यात्मवाद का सिद्धांत है कि अपनी दु:खदाई परिस्थितियों को टालने के लिए और सुखदायक अवसर उत्पन्न करने के लिए अपने भीतर दृष्टि डालिए, जड़ को तलाश कीजिए। सारे प्रसंगों का उत्पादन और परिवर्तन करने वाला केंद्रबिंदु अपने अंदर है, इसलिए दूसरों का आसरा तकने की अपेक्षा अपना निरीक्षण, संशोधन और संपादन आरंभ कर दीजिए। बाहरी सहायताएँ प्राप्त होना इस बात पर निर्भर है कि हमारी आंतरिक योग्यताएँ कैसी हैं? एक मनुष्य को सब लोग आदर करते हैं, उस पर विश्वास करते हैं, उसको सहायता देते हैं, पर दूसरे मनुष्य को इससे ठीक उलटा व्यवहार प्राप्त होता है। 'संसार के लोग पक्षपाती हैं' यह कह देने मात्र से काम नहीं चलेगा। हमें दोनों व्यक्तियों के गण, स्वभाव, चातुर्य और आचरण का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करना होगा। आप देखेंगे कि दोनों व्यक्तियों की आकृति एक सी होते हुए भी मानसिक स्थिति में जमीन-आसमान का अंतर है। इस अंतर पर ही जीवन की सफलता-असफलताएँ निर्भर रहती हैं। यदि हमें आगे बढ़ना है तो इसी मूल केंद्र के सुधार और परिवर्तन पर ध्यान देना होगा।

# अपने विश्वास और सिद्धांतों पर श्रद्धा कीजिए

अध्यात्मवाद की तीसरी आधार भित्ति का नाम है—'श्रद्धा'। पाँव टिकाने के लिए स्थान होने पर ही ठीक तरह खड़ा रहा जा सकता है। जिसका कोई स्थान नहीं, कोई निर्भरता नहीं, कोई उद्देश्य नहीं, ऐसा व्यक्ति अपने लिए और दूसरों के लिए खतरनाक है। भारतीय दंड विधान की धारा १०९ ऐसे लोगों के ऊपर लागू होती है, जो निरुद्देश्य फिरते हैं, कार्यक्रम और आधार के बिना विचरण करते हैं। उस कानून के निर्माता विद्वान विचारकों का मत है कि ऐसे व्यक्ति अपराध की ओर ही प्रवृत्त हो सकते हैं और समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं, इसलिए उनकी निरुद्देश्यता पर प्रतिबंध लगाना आवश्यक है। उपरोक्त कानून के अनुसार पुलिस किसी आबारा आदमी को गिरफ्तार करके एक साल के लिए जेल भिजवा सकती है।

जिस प्रकार शरीर की आवारागर्दी अपराध है, वैसे ही विश्वास की अस्थिरता मानसिक जुर्म है। जिस आदमी का अपना कोई सिद्धांत नहीं, उद्देश्य नहीं, कार्यक्रम नहीं, आधार नहीं, वह निश्चय ही शैतानी, चमक-दमक की ओर आकर्षित होगा और कुमार्ग पर चलने लगेगा। स्थिरता के अभाव में हवा के झोकों के साथ टूटे पत्ते की तरह इधर-उधर उड़ता फिरेगा। कब कहाँ जा पहुँचे, यह अनिश्चितता पत्ते के बारे में सहन की जा सकती है, पर डाँवाडोल मनुष्य असह्य है। आज आपका विश्वास है कि देशभक्ति कर्तव्य है, कल ही देश द्रोह पर उतर आएँ। आज हिंदू हैं, कल मुसलमान

हो जाएँ, परसों ईसाई। आज टोपी लगाते हैं, कल टोप पहनें, परसों साफा बाँधें, तरसों पगड़ी लपेटें। आज विवाह करके दुलहिन लाए हैं, कल तलाक दे दें। आज दान दिया है, कल वापस छीन लें। इस तरह विचार और विश्वासों की अस्थिरता मनुष्य को एक प्रकार का मानसिक अपराधी ठहरा देती है। उसका विश्वास उठ जाता है, लोग संदिग्ध और सशंकित दृष्टि से उसे देखते हैं, विश्वास के अभाव में वह दूसरों के सहयोग से वंचित हो जाता है, ऐसा मनुष्य न तो स्वयं अपने लिए ही अच्छा रहता है और न दूसरों को कुछ सहयोग दे सकता है।

अस्थिर विचार और डॉवाडोल सिद्धांतों के मनुष्य इस संसार में कम नहीं हैं। चोरी न करने का उपदेश करने वाले, अस्तेय की महिमा गाते-गाते न थकने वाले, लोगों में से कितने ही ऐसे मिलते हैं, जो मौका पाते ही चोरी करने में नहीं चूकते। ब्रह्मचर्य के समर्थक होते हुए भी व्यभिचार रत, ईश्वर की सर्वव्यापकता का बखान करते-करते न थकने वाले मंदिरों में बैठकर गजब ढाते हमने देखे हैं। धर्म का महत्त्व मानने वालों को झूँठी गबाही देते हुए, अपहरण करते हुए, अनीति में प्रवृत्त होते हुए हमने देखा है। गीता का पाठ करके आत्मा की अमरता को सौ-सौ बार दोहराने वाले, जब मौका पड़ता है, तो मरने की जोखिम उठाना तो दूर, मामूली चोट खाने से भी बुरी तरह डरते हैं। हमारे परिचित एक पंडितजी १७ वर्ष से गीता की कथा कहने का पेशा करते हैं, कथा से उन्हें काफी धन मिलता है। अच्छी-खासी पूँजी उनके पास जमा हो गई है। एक बार उनके घर पर डाकू चढ़ आए, रुपया लूटने के साथ ही उन्होंने पंडितजी की धर्मपत्नी और सयानी लड़की के साथ बलात्कार भी किया। पंडितजी डाकुओं की आँख बचाकर एक चारपाई की आड़ में छिपे बैठे थे और यह सब दृश्य देख रहे थे। शारीरिक कष्ट के भय से डाकुओं का विरोध करने की हिम्मत न पड़ी और उन खून खौला देने वाले दृश्यों को चुपचाप देखते रहे।

यदि सचमुच पंडितजी को गीता की शिक्षा का ज्ञान होता और आत्मा की अमरता पर सच्चे हृदय से विश्वास करते होते तो कर्तव्य की पुकार को इस प्रकार न दबा देते। मृत्यु से इतना न डरते। हम यह नहीं कहते कि वे गीता को झूठा मानते हैं या अमरता की बात किसी छल से कहते हैं। जहाँ तक विचारों का ताल्लुक है वे अपने विचारों के प्रति सच्चे हैं, परंतु विचारों के साथ वह दृढ़ विश्वास नहीं था, जिसको 'श्रद्धा' कहा जाता है। विचार तो ऐसा तत्त्व है, जो जरा-सा दबाव पड़ने पर आसानी से बदल जाता है। कोई विद्वान या बुद्धिमान मनुष्य तर्क-प्रमाण और बहस के आधार पर आपको हरा सकते हैं, उनकी उक्तियाँ और प्रमाण शैली ऐसी जोरदार हो सकती है कि आप निरुत्तर हो जाएँ, हार मान लें और ऐसा अनुभव करने लगें कि शायद मैं गलती पर हूँ। तब यह बहुत सरल है कि अपने विचार बदल दें, यदि दुर्भाग्य से परस्पर विरोधी विचार वाले बहुत से विद्वानों के बीच में रहने का प्रसंग आ पड़े और परस्पर विरोधी तर्कों को सुनें, तो आपको रोज विचार बदलने के लिए विवश होना पड़ सकता है। उस स्थिति में किसी निश्चित नतीजे पर पहुँचना कठिन होगा, बुद्धि, भ्रम की अस्थिरता बढ़ जाएगी। इसी प्रकार यदि कोई भारी कष्ट, पीड़ा, आघात, व्यथा, वेदना सामने आए, तो उनके दबाव से विचारों को पलट सकते हैं। चोरों का विचार होता है कि पकड़े जाने पर हम अपने साथियों का नाम प्रकट न करेंगे, पर राजदंड की यंत्रणा से घबराकर कइयों को अपना विचार बदलना पड़ता है और वे अपने साथियों का नाम प्रकट कर देते हैं। लोभ का दबाव कुछ ऐसा ही है, रुपये का लालच, रूप-सौंदर्य का लालच, ख्याति का लालच, मनोरंजन का लालच, बड़े-बड़े विचारवानों को डिगा देता है। अपनी पत्नी और पुत्री का अपमान देखते हुए भी शरीर कष्ट के भय से यदि पंडितजी के अमरता के विचार क्षणभर में विलीन हो गए हों तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है।

किसी प्रकार के विचार रखना ही इसके लिए पर्याप्त नहीं है कि यह व्यक्ति इस प्रकार के कार्य भी करेगा। बहुत से मनुष्य एक प्रकार के काम में लगे हुए हैं, पर विचार उसके विपरीत दूसरे प्रकार के रखते हैं। बाहर से आचरण कुछ और करते हैं, भीतर से विचार कुछ रखते हैं। कार्य और विचारों का एक न होना, इस बात का प्रमाण है कि विचार बहुत ही उथले, निर्बल एवं अपूर्ण हैं, दिमाग तक ही उनकी प्रगति है अंत:करण तक वे प्रवेश नहीं पा सके हैं। ऐसे ही लँगड़े, लूले, आधे-अधकचरे विचार विश्वासों को लोग मन में भरे फिरते हैं। जब मौका पड़ता है, परीक्षा का अवसर आता है, तो झट फिसल जाते हैं, जैसी हवा चलती है, वैसी ही पीठ कर लेते हैं। अभी यह कहते हैं अभी वह कहने लगते हैं। यह अस्थिरता मनुष्य की मानसिक आवारागर्दी प्रगट करती है, ठीक वैसे ही, जैसी शारीरिक स्थिति के कारण दफा १०९ ताजीरात हिंद के अनुसार, जेल खाने की हवा खानी पड़ती है।

यदि मनुष्य का अपना कोई निजी विश्वास न हो, निजी आधार न हो तो हवा के रुख के साथ इधर-उधर उड़ता फिरेगा और जीवन में कोई कहने लायक उन्नति न कर सकेगा। एक मील पूरब को चले, फिर लौट पड़े, आधा मील पश्चिम को आए, फिर विचार बदला, दो मील उत्तर को बढ़े, फिर समझ में आया कि पश्चिम को चलें। डेढ़ मील चलकर वहाँ से भी रुक गए, फिर किसी और तरफ चलने की सोचने लगे। इस पद्धति से महीनों चलते रहने वाला कोई निश्चित मंजिल तय न कर सकेगा, किंतु जो लगातार एक ही दिशा में चलता रहता है, वह एक ही महीने में काफी मंजिल पार कर लेगा। जिसके सुदृढ़ विश्वास हैं, परिपक्व निश्चय हैं, अपने स्थिर सिद्धांतों पर आरूढ़ रहता है, वह समाज में अपना एक नियत स्थान बना लेता है। मजबूती का आदर होता है, जो जिन विश्वासों पर मजबूती के साथ डटा हुआ है, उन्हें उनके

द्वारा ही पर्याप्त लाभ हो सकता है। दृढ़ता में शक्ति है और शक्तिशाली पुरुष वीरों की तरह सम्मानित होता है।

महापुरुषों में एक सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे अपने विचारों पर पूरी निष्ठा के साथ दृढ़ रहते हैं, अपने उद्देश्यों के प्रति उन्हें पूरी श्रद्धा होती है। उस श्रद्धा से, निष्ठा से प्रेरित होकर कार्य करते हैं और कितने ही बड़े कष्ट एवं प्रलोभन सामने आने पर भी विचलित नहीं होते। अपनी निष्ठा के लिए सर्वस्व की बाजी लगा देते हैं, प्राणों की भेंट चढ़ा देते हैं, परंतु निश्चय से जरा भी नहीं डिगते। यह दृढ़ता ही किसी मनुष्य की सबसे बड़ी प्रामाणिकता है। इस प्रामाणिकता के कारण लोग उन पर विश्वास करते हैं, जिसके ऊपर विश्वास किया जाता है, वह सचमुच महान है, उसकी महानता चिरकाल तक स्थिर रहेगी, कदरदानी का संसार में से लोप नहीं हो गया है। दृढ़ता का बहुमूल्य राज सदैव उपेक्षित नहीं पड़ा रहता, उसे पहचानने वाले, कदर करने वाले, जौहरी मिल ही जाते हैं। कई महापुरुषों के विचार कुछ त्रुटिपूर्ण थे तो भी उनकी निष्ठा, श्रद्धा और दृढ़ता ने उन्हें प्रातःस्मरणीय और पूजनीय बना दिया।

महाराणा प्रताप का जंगलों में रहते फिरना, भामाशाह का दान, हकीकत राय की दीवार में चुना जाना, बंदा-वैरागी को खौलते तेल के कढ़ाव में उबालना, राम का वनवास, हरिश्चंद्र का स्त्री-पुत्रों को बेचना, दधीचि का अस्थिदान, मोरध्वज का पुत्र बलिदान, रानी पद्मनी का अग्नि दाह, सुकरात का विष पान, ईसा का क्रूसारोहण, यह सब गाथाएँ निष्ठा के ऊपर अवलंबित हैं। अपने विश्वासों की रक्षा करने के लिए सर्वस्व की बाजी लगा देना। श्रद्धालु आत्माओं का ही काम है। आज के अस्थिर विश्वास वाले लोगों के सामने ऐसे अवसर आएँ, तो वे चट बदल जाएँ। बालक हकीकत राय ने दीवार में चुना जाना पसंद किया, पर हिंदू धर्म छोड़ने को तैयार न हुआ, आज का कोई चालाक लड़का होता, तो सोचता—जान गँवाने की बजाए तो मुसलमान हो जाना ठीक है। वह चट मुसलमान हो

जाता। प्राचीन समय में लोग अपने वचन के पालन के लिए, धर्म रक्षा के लिए, सिद्धांतों की पुष्टि के लिए बड़ी-से-बड़ी कुरबानी करने को तैयार रहते थे, आज कूटनीति का, चालबाजी का, अधिक लाभ का व्यापार है। फैशन की तरह विचारों को धारण करते हैं और हजामत की तरह जब तक रुचता है, उन्हें पाले रहते हैं और जब चाहते हैं सफाचट करा देते हैं। बड़े-बड़े जोरदार व्याख्यान देकर साम्यवाद का महत्त्व समझाने वाले स्वयं पूँजीवाद के केंद्र बने हुए हैं, धर्म-धर्म पुकारने वाले स्वयं अधर्म के संचालक हैं, यह उदाहरण बताते हैं कि लोगों ने विचारों को फैशन से अधिक महत्त्व नहीं दिया है।

आज वे शंकराचार्य कहाँ हैं? जो वैदिक धर्म की रक्षा के लिए प्राण हथेली पर धरकर निकल पड़ें, और नन्हीं-सी जान को विरोधी अपार जन संख्या के सामने खड़ा करें। आज वे दयानंद कहाँ हैं? जो मेवाड़ की रत्न जटित महंती को अस्वीकार करके दर-दर अपमान सहते फिरें और अंत में विषपान करके प्राण त्यागें? आज का प्रोसेफर मोटी तनखाह के बदले कुछ घंटे लेक्चर देकर छुट्टी पाता है, बीते दिनों ऋषि लोग रूखा-सूखा अन्न खाकर अपनी असाधारण विद्या, शिष्यों को घोट-घोटकर पिलाते थे। यदि चाहते तो वे ऋषि लोग भी अपनी विद्या के बदले में पैसा कमा सकते थे। परंतु उनके सामने अपने कर्तव्य-धर्म का सिद्धांत था, जिसका पालन करने के लिए गरीबी का जीवन स्वीकार करना मामूली-सी बात थी।

अध्यात्मवाद के आचार्यों ने सदैव इस बात पर जोर दिया है कि मनुष्य श्रद्धालु बनें। काफी सोच-समझकर, पर्याप्त छान-बीनकर, किन्हीं सिद्धांतों को स्वीकार किया जाए और स्वीकार करने के बाद उसका दृढ़ता के साथ पालन किया जाए। वह विश्वास इतने दृढ़ होने चाहिए कि परीक्षा और कठिनाई के समय भी ठहर सकें, उनके लिए कुछ त्याग और बलिदान भी किया जा सके।

तर्क अच्छी वस्तु है, सचाई जानने में उससे सहायता मिलती है, अंधविश्वास और भ्रम-पाखंडों की सफाई उससे की जाती है और एक हद तक पथ प्रदर्शन भी होता है। किंतु उसकी कुछ नियत मर्यादा हैं। जीवन के मूल स्रोत में उत्साह तर्क से नहीं, श्रद्धा से पैदा होता है। दृढ़ता, त्याग, भावनापरायणता, स्थिरता, श्रद्धा से आती है, लोभ और कष्टों को ठुकराकर जब मनुष्य लोहस्तंभ की तरह अडिग खड़ा होता है, तब समझना चाहिए कि श्रद्धा की सुदृढ़ शिलाओं में इसकी जड़ें पहुँच गई हैं। केवल तर्कजन्य विचार तो बहुत ही कमजोर होते हैं, बालू के महल की तरह वे जरा से धक्के में तितर-बितर हो जाते हैं।

गुरु का बड़ा भारी माहात्म्य वर्णन किया गया है। कहीं-कहीं तो गोविंद से भी गुरु को बड़ा बताया गया है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर से उसकी उपमा दी गई है। गुरु भक्ति को ईश्वर भक्ति से ऊँचा कहा गया है। इसमें एक व्यक्ति को माध्यम बनाकर श्रद्धा का बीज बोने का प्रयास है। सिद्धांतों, उद्देश्यों पर श्रद्धा जमाने की साधना का आरंभ बालकों को गुरु भक्ति द्वारा कराया जाता था, उच्छृंखलता, उद्दंडता, स्वेच्छाचार के विरुद्ध यह एक स्वेच्छा-स्वीकृत, मानसिक नियंत्रण है, जिसके द्वारा बड़े-बड़े मानसिक लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। शिष्य की मान्यता के अनुसार गुरु का दर्जा सचमुच गोविंद से बड़ा न हो जाएगा। वह अपूर्ण प्राणी ही रहेगा, पर अपनी भावना की दृढ़ता द्वारा शिष्य उससे इतना लाभ उठा लेगा जितना गोविंद से उठाया जा सकता है। द्रोणाचार्य ने अपनी सारी योग्यता खरच करके पांडवों को वाणविद्या सिखाई थी, पर उनकी मिट्टी की मूर्ति को गुरु बनाकर उसकी शिष्यता में वाणविद्या सीखने वाला भील पुत्र 'एकलव्य' पांडवों से अधिक प्रवीण हो गया, यहाँ तक कि स्वयं द्रोणाचार्य भी उससे पीछे रह गए। यह भी श्रद्धा का चमत्कार है। भील-पुत्र ने मिट्टी के पुतले पर श्रद्धा जमाई और उसके आधार पर अपने अंदर छिपे हुए अनंत

विद्याओं के भांडार को जाग्रत कर लिया। गुरु-शिष्य का प्रकरण इसी एक महान सत्य को अपने गर्भ में छिपाए हुए है। आज भले ही 'गुरुडम' के विकृत रूप में दृष्टिगोचर होता हो, पर मूलत: गुरु माहात्म्य का तत्त्वज्ञान श्रद्धा का प्रारंभिक बीजारोपण करने के निमित्त ही निर्मित हुआ है।

विभिन्न आचार्यों द्वारा निर्मित विभिन्न आध्यात्मिक साधनाएँ श्रद्धा को उपजाने के अपने-अपने ढंग के स्वतंत्र प्रयत्न हैं। वे देखने में पृथक् हैं तो भी अंतत: एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। इन साधनों द्वारा जो फल प्राप्त होते हैं, उनका कारण यह है कि श्रद्धा अत्यंत ही एक प्रबल आध्यात्मिक शक्ति है, उसकी प्रचंड प्रेरणा के कारण छिपी हुई अंतरंग योग्यताएँ प्रस्फुटित हो उठती हैं। साधक उनका चमत्कार देखता है। उसे आम खाने से मतलब न कि पेड़ गिनने से। अध्यात्मवाद शक्तिशाली बनाने की विद्या है, इस विज्ञान का प्रधान कार्य यह है कि अपूर्णता को दूर करके बल का, अस्थिरता को दूर करके स्थिरता का आविर्भाव करे। समस्त साधनाएँ 'श्रद्धा द्वारा शक्ति उत्पादन' के केंद्रबिंदु की परिक्रमा कर रही हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन सबका अस्तित्व कायम रह रहा है।

आप आज की परिस्थितियों में देवी-देवताओं की उपासना में, तंत्र-मंत्रों की साधना में, गुरु-शिष्य परंपरा में दिलचस्पी नहीं रखते। हमारा उसके लिए कुछ भी आग्रह नहीं है। जब दूसरे रास्ते मौजूद हैं, तो अपनी सुविधा और रुचि का मार्ग पसंद करने की आजादी होनी चाहिए। मूल मंतव्य श्रद्धा से है, आप श्रद्धा को अपने अंदर स्थान देते रहिए। अपनी महानता में श्रद्धा रखिए, अपनी पत्नी के प्रेम में विश्वास कीजिए, बालकों की निष्कपटता पर भरोसा रखिए, माता-पिता और गुरुजनों के वात्सल्य पर यकीन कीजिए। इस दुनिया में पाप की अपेक्षा पुण्य अधिक है। अधर्म से धर्म ज्यादा है। भलाई से बुराई कम है, प्रकाश से अंधकार न्यून है—

ऐसी मान्यता बनाइए। अविश्वास और आशंका को कम कीजिए, प्रियजनों की सचाई पर भरोसा बढ़ाइए।

यह ठीक है कि ठगी, कपट, धोखा-धड़ी और बनावट बहुत है; पर इतनी नहीं, जो त्याग, स्नेह, सरलता और सचाई से अधिक हो। यह विश्वास ईश्वर की पुण्यकृति है, इसमें उपयोगी और आनंददायक तत्त्व अधिक हैं, ऐसी मान्यता को बढ़ाते जाइए। अपने बारे में भी इसी दृष्टिकोण से विचार कीजिए, आप समर्थ हैं, दृढ़ प्रतिष्ठ हैं, वचन का पालन करते हैं, सच्चे हैं, ईमानदारी का आचरण करते हैं। भले ही दूसरे दोष मौजूद हैं, पर निस्संदेह आप में अच्छे गुण भी विद्यमान हैं और उनकी मात्रा दोषों की अपेक्षा कहीं अधिक है। अपने सात्त्विक अंशों को प्रसन्नतापूर्वक बार-बार निरीक्षण कीजिए और अपनी उच्चता पर, महानता पर विश्वास करिए, श्रद्धा करिए।

'परमार्थ' आपका लक्ष्य होना चाहिए, क्योंकि स्वार्थ का सबसे सुंदर वैज्ञानिक विधान परमार्थ है। दूसरों का लाभ सोचने से बढ़कर अपना लाभ और किसी बात में नहीं है। इसलिए परमार्थ पर श्रद्धा रखिए। अपनी पवित्रता पर श्रद्धा रखिए। ऐसे विश्वास और सिद्धातों को अपनाइए, जिनसे लोक-कल्याण की दिशा में प्रगति होती हो। उन विश्वासों और सिद्धांतों को हृदय के भीतरी कोने में गहराई तक उतार लीजिए। इतनी दृढ़ता जमा लीजिए कि कष्ट और प्रलोभन सामने उपस्थित होने पर भी आप उन पर दृढ़ रहें, परीक्षा देने एवं त्याग करने का अवसर आए, तब भी विचलित न हों। वे विश्वास, श्रद्धास्पद होने चाहिए, प्राणों से अधिक प्यारे होने चाहिए। प्राण-रक्षा के लिए हर संभव उपाय को काम में लाया जाता है, आप अपनी श्रद्धायुक्त मान्यताओं की रक्षा के निमित्त बड़े-से-बड़ा जोखम उठाने के लिए तत्पर हो जाइए।

अध्यात्मवाद कहता है कि आप अपनी मनोभूमि की रचना ऐसी कीजिए जिसमें कोई विश्वास बोये जाएँ तो दृढ़तापूर्वक खड़े

रहें। तर्क द्वारा भले-बुरे की पहचान किया कीजिए, असत्य के अँधेरे में सत्य को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न किया कीजिए, परंतु मानव तत्त्व के मूलभूत सिद्धांत पर तर्क का कुल्हाड़ा मत चलाया कीजिए। बूढ़े माता-पिता की सेवा में पैसा खरच करने से क्या लाभ? स्त्री को जेवर क्यों न बनवा दूँ। जिससे वह मेरी अधिक सेवा करे? तर्क की दृष्टि से यही मानना पड़ेगा कि बूढ़े माता-पिता को एक कोने में पड़े रहने दिया जाए और स्त्री को जेवर बनवाए जाएँ, क्योंकि आज का प्रत्यक्ष लाभ इसी में है। यदि अपने जीवन-निर्माण में भी इसी तर्क पर अवलंबन किया, तो सारी सात्त्विकता और महानता नष्ट हो जाएगी, मानव में पशुता से अधिक और कुछ शेष न रहेगा। अंत:करण के उच्च दैवी गुण भले ही तर्क की तराजू में हलके बैठते हों, पर आप उन्हें छोड़िए मत। श्रद्धा द्वारा उनकी रक्षा कीजिए और आग्रहपूर्वक उन पर दृढ़ रहिए।

यदि आप अध्यात्मवादी बनना चाहते हैं, तो उसके तीन प्रमुख सिद्धांतों को भली प्रकार हृदयंगम कर लीजिए। (१) अपने को अविनाशी मानिए, (२) आत्मनिर्भर हूजिए, (३) अपने विश्वासों और सिद्धांतों पर श्रद्धा कीजिए। यही वह त्रिवेणी है जिसमें स्नान करके सत्पुरुष, शाश्वत शांति का रसास्वादन किया करते हैं।

आप शक्तिवान हैं! सर्वशक्तिवान पिता के अविनाशी पुत्र हैं। अपनी उन्नति के लिए बाहर मत ताकिए, वरन अपने अंत:प्रदेश की तलाश कीजिए। उसमें अनंत शक्तियों का भंडार छिपा हुआ है। अंतर्मुखी होकर जब आप अपने भीतर तलाश करेंगे, तो आपको वह भंडार प्राप्त होगा जिसमें आनंद और उल्लास प्रदान करने वाले अनेक साधन भरे पड़े हैं। आत्म निर्भर हूजिए, अपने ऊपर विश्वास कीजिए, आत्म ज्योति से आपका जीवन प्रकाशवान हो जाएगा।

# इन परिस्थितियों में ही आगे बढ़िए

'अगर मुझे अमुक सुविधाएँ मिलती, तो मैं ऐसा करता' इस प्रकार की बातें करने वाले एक झूठी आत्म प्रवंचना किया करते हैं। अपनी नालायकी को भाग्य के ऊपर, ईश्वर के ऊपर, थोपकर खुद निर्दोष बनना चाहते हैं। यह एक असंभव माँग है कि यदि मुझे अमुक परिस्थिति मिलती, तो ऐसा करता। जैसी परिस्थिति की कल्पना की जा रही है, यदि वैसी मिल जाए तो वे भी अपूर्ण मालूम पड़ेंगी और फिर उससे अच्छी स्थिति का अभाव प्रतीत होगा। जिन लोगों के पास धन, विद्या, मित्र, पद आदि पर्याप्त मात्रा में मिले हुए हैं, हम देखते हैं कि उनमें से भी अनेक का जीवन बहुत अस्त-व्यस्त और असंतोषजनक स्थिति में पड़ा हुआ है। धन आदि का होना उनके आनंद की वृद्धि न कर सका, वरन जी का जंजाल बन गया। जो सर्प विद्या नहीं जानता, उसके पास बहुत साँप होना भी खतरनाक है। जिसे जीवन जीने की कला का ज्ञान नहीं, उसे गरीबी में, अभावग्रस्त अवस्था में थोड़ा-बहुत आनंद तब भी है, यदि वह संपन्न होता, तो उन संपत्तियों का दुरुपयोग करके अपने को और भी अधिक विपत्तिग्रस्त बना लेता।

यदि आपके पास आज मन चाही वस्तुएँ नहीं हैं, तो निराश होने की कुछ आवश्यकता नहीं है। टूटी-फूटी चीजें हैं, उन्हीं की सहायता से अपनी कला को प्रदर्शित करना आरंभ कर दीजिए। जब चारों ओर घना अंधकार छाया हुआ होता है, तो वह दीपक जिसमें छदाम का दिया, कुछ पैसे का तेल और दमड़ी की बत्ती है, कुल मिलाकर पच्चीस पैसे की भी पूँजी नहीं है, चमकता है और

अपने प्रकाश से लोगों के रुके हुए कामों को चालू कर देता है। जब कि हजारों पैसे के मूल्य वाली वस्तुएँ चुपचाप पड़ी होती हैं, यह एक पैसे की पूँजी वाला दीपक प्रकाशवान होता है, अपनी महत्ता प्रकट करता है, लोगों का प्यारा बनता है, प्रसंशित होता है और अपने आस्तित्व को धन्य बनाता है। क्या दीपक ने कभी ऐसा रोना रोया कि मेरे पास इतने मन तेल होता, इतनी रुई होती, इतना बड़ा मेरा आकार होता, तो ऐसा बड़ा प्रकाश करता? दीपक को कर्महीन नालायकों की भाँति बेकार-शेखचिल्लियों के से मनसुबे बाँधने की फुरसत नहीं है, वह अपनी आज की परिस्थिति, हैसियत, औकात को देखता है, उसका आदर करता है और अपनी केवल मात्र कुछ पैसे की पूँजी से कार्य आरंभ कर देता है। उसका कार्य छोटा है बेशक, पर उस छोटेपन में भी सफलता का उतना ही अंश है, जितना कि सूर्य और चंद्र के चमकने की सफलता है।

अनुभवियों का कथन है—"**उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः, दैवेनदेवमिति कापुरुषा वदन्ति।**" लक्ष्मी उद्योगी पुरुषों को ही प्राप्त होती है और कायर लोग दैव-दैव पुकारा करते हैं। भाग्य के भरोसे बैठे रहने से, तरह-तरह की कल्पना और जल्पना करते रहने से कुछ प्राप्त नहीं होता। इच्छा को पूर्ण करने के लिए जो निरंतर उत्साहपूर्वक प्रयत्न करते हैं, वे ही सफलता के भागी होते हैं।

*मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा*